एक कहानी ऐसी भी

डॉ० सुनील जाधव
प्रा० हिन्दी विभाग
यशवंत महाविद्यालय, नांदेड़ महाराष्ट्र

ए.बी.एस. पब्लिकेशन
वाराणसी - 221 007

ISBN : 978-93-81549-49-0

पुस्तक : एक कहानी ऐसी भी

लेखक : डॉ० सुनील जाधव

प्रकाशक : **ए.बी.एस. पब्लिकेशन**
वाराणसी - 221 007
Mob. 09450540654
E-mail. : abspublication@gmail.com

संस्करण : प्रथम, 2013

मूल्य : 195.00 रु० मात्र

शब्द सज्जा : रिचा ग्राफिक्स

मुद्रण : श्री बाला जी प्रिंटर्स

समर्पण

श्री गुलाबसिंह जाधव

एवं

माता शकुंतला जाधव जी

को

सादर

नई संभावनाओं का सफर.......

सुनील जाधव एक युवा, उत्साही, संवेदनशील और परिश्रमी लेखक हैं। 'एक कहानी ऐसी भी' उनका दूसरा कहानी संग्रह है। इसके पहले उनकी कविता एवं लेखों की पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। सुनील महाराष्ट्र में नादेड़ से हैं। नादेड़ की जमीन, वहाँ की भाषा उनकी अपनी है। वहाँ रहते हुए उन्होंने जाति, धर्म और वर्ग से जुड़े कई संघर्षों को बहुत करीब से देखा है, उनमें हिस्सा लिया है, इनमें खुद को गलाया और तपाया है।

सुनील अध्ययन–अध्यापन से जुड़े हैं और ऐसा करते हुए वह हर उस बात के प्रति सचेत हैं, जो हमारे समय और समाज पर प्रभाव डलती है। इसीलिए उनके संग्रह की कहानियों में विषय वैविध्य स्पष्ट दिखाई देता है। उनकी कहानियों में भले ही भाषा और शिल्प के स्तर पर कुछ कोर–कसर दिखाई देती हो, पर सामाजिक सरोकार की दृष्टि से, एक कहानीकार की स्पष्ट पक्षधरता की दृष्टि से वे अच्छी और मनुष्यता के पक्ष में खड़ी होनेवाली कहानियाँ हैं।

इस संग्रह में दस कहानियाँ हैं, जिनमें 'भृण, 'एक कहानी ऐसी भी' और 'नंदनी' जैसी कहानियाँ हैं, जिनमें कहानी के स्त्री पात्र बहुत सशक्त हैं और वे जीवन में आने वाली मुश्किलों से हार नहीं मानते बल्कि उनसे टक्कर लेते हुए, लड़ते हुए आगे बढ़ते हैं। इन कहानियों के स्त्री पात्र सुनील के कहानीकार की उपलब्धी हैं। वह उनकी समस्याओं, संघर्षों, उनके जीवन की आशाओं–निराशाओं को उभारने में सफल रहे हैं। इस संग्रह की कहानियों में कहानीकार पात्रों से जुड़े विवरणों को थोड़ा और विस्तार देकर उन्हें ज्यादा सजीव और विश्वस्नीय बना सकता था, पर ऐसा न हो सकने के कारण वे कहीं–कहीं नकली से जान पड़ते हैं। वहीं उनकी चारित्रिक विशेषताओं के साथ–साथ उनके द्वंद्वों को और गहराई से चित्रित किया जा सकता था, जिससे पाठक उनसे संवेदना के स्तर पर अधिक जुड़ाव महसूस करते। ऐसे ही कहानियों में घटने वाली घटनाओं और संवादों के बारे में भी मुझे लगता है कि चलताऊ भाषा और लेखन के फिल्मी अंदाज ने उनके प्रभाव को बढ़ाने की बजाय कई जगह पर कम कर दिया है। कहानियों की घटनाओं के कालखण्ड को भी अनावश्यक रूप से खींचकर लम्बा किए जाने से, वे टी वी के किसी अनन्तकाल तक चलने वाले और अपनी मन–मर्जी से कहीं भी मुड़ जाने वाले धारावहिक जैसी हो गई हैं, जबकी संग्रह में व्यंग्य का प्रयोग

करते हुए लिखी गई कहानियाँ गम्भीर विषयों पर लिखी गई कहानियों से ज्यादा रोचक और पठनीय बन पड़ी हैं।

संग्रह में 'मेन सिजने सेवमान' नामकी कहानी दरसल एक संस्मरण जैसा है, जो कहानी बनते–बनते रह गया है। यहाँ यह कहना आवश्यक है कि किसी घटना या स्थान का व्यौरेबार वर्णन ही किसी गद्य को कहानी बनाने के लिए पर्याप्त नहीं होता, उसमें और भी बहुत कुछ कल्पना से जोड़ना और घटाना जरूरी है। यह बात इसी संग्रह की कहानी 'सुलभ शौचालय' में है। इसी कारण कई बार बड़ी–बड़ी घटनाओं के वर्णन, एक रिपोर्ट मात्र बनकर रह जाते हैं और कभी बहुत छोटी और मामूली बात एक अच्छी और पठनीय कहानी में बदल जाती है। इसीलिए साहित्य में नए प्रयोगों, अविष्कारों और चमत्कारों के लिए हमेशा जगह बनी रहती है। जब भी कोई संवेदनशील रचनाकार कलम उठाता है, तो अपने अनुभव और कल्पना से वह साहित्य में कुछ न कुछ नया जोड़ता है।

सुनील जाधव एक संवेदनशील और जुझारू व्यक्तित्व के मालिक हैं, उन्हें एक संभावनाशील रचनाकार के रूप में देखा जाना चाहिए। उन्हें अभी साहित्य में एक लम्बा सफर तय करना है और उस लिहाज से उनके इस कहानी संग्रह को एक अच्छी शुरूआत कहा जा सकता है। उनको इसके लिए बधाई और शुभकामनाएं....,

–विवेक मिश्र
दिल्ली

अपनी बात

घटित घटनाओं की सत्य और कल्पना मिश्रित या सत्य की कलात्मक, साहित्यिक, अभिव्यक्ति ही कहानी है। कहानी हमे अतीत से रूबरू करवाते हुए वर्तमान तथा भविष्य से जोड़ने का कार्य करती हैं। कहानी कहानीकार द्वारा अपनी बात को रखने का सशक्त माध्यम होती हैं। आज की भाग दौड़ भरी दुनिया में लोगों के पास बहुत कम समय बचा है। या तो वह शुद्ध मनोरंजन पसंद करता हैं, या फिर वह यंत्र बन गया है। ऐसे में कम समय में पढ़ी जाने वाली विधा को वह अपना अधिक समय देता हैं। कहानी ऐसी ही एक विधा है, जिसे कम समय में पढ़ा जा सकता है। पढ़ने वाला पाठक उसे एक झटके में ही पढ़ लेता है। पर अब कहानी का पाठक भी तीन भागों में बंट चुका है। एक लघु कहानी जो आकार में छोटी होती हैं। इसे पढ़ने के लिए जादा से जादा दो मिनट या तीन मिनट का समय लगता हैं। आज कल इसे पढने वाला अच्छा खासा पाठक वर्ग बन गया है। दूसरा मध्यम आकार वाली कहानी, जो लघु कहानी से आकार में बड़ी होती हैं। इसे दस से पन्द्रह मिनट में पढ़ा जा सकता है। और तीसरा वर्ग है, दीर्घ कहानियों का। इसे पढ़ने के लिए बीस से पच्चीस मिनट का समय लगता हैं। इसे पढ़ने वाला पाठक वर्ग भी अब अच्छा खासा बन गया है। यह कहानियाँ कम समय में उपन्यास का सा आनंद प्रदान करती है। लम्बी कहानियाँ पसंद करने वाले पाठक वर्ग के मस्तिष्क के लिए यह एक उपहार है।

मैंने भी लम्बी कहानियाँ लिखने का प्रयास किया है। लम्बी कहानियों का यह मेरा पहला ही प्रयास है। मुझे हर्ष हो रहा है कि मेरी एक साल की मेहनत अब किताब का आकार ले रही है। यह मेरा दूसरा कहानी संकलन है। इस कहानी संकलन में मैनें दस कहानियाँ रखी है। कहानी संकलन का शीर्षक रखना कठिन कार्य था। पर कोई शीर्षक तो रखना ही था। इसीलिए जो कहानी अन्य कहानियों की तुलना में लम्बी थी, उसे ही मैंने शीर्षक के रूप में चयन किया हैं । मेरे इस कहानी संकलन का शीर्षक है, 'एक कहानी ऐसी भी'। इससे पूर्व मेरी मध्यम आकर वाली कहानियों का संकलन ''मैं भी इन्सान हूँ'' का ई.स.जून-2012 में अंतर्राष्ट्रीय हिंदी सम्मेलन, ताशकंद, 'उजबेक', रशिया से विमोचन हो चुका है। हिंदी साहित्य प्रेमी तथा हिंदी साहित्य पाठकों के प्रोत्साहन का ही नतीजा था कि मेरे हाथों से दूसरे कहानी संकलन 'एक कहानी ऐसी भी' का सृजन हुआ है। मेरा भाग्य है कि इस कहानी संकलन

का विमोचन सातवें अंतर्राष्ट्रीय हिंदी सम्मेलन, कम्बोडिया जून-2013, से होने जा रहा हैं। 'एक कहानी ऐसी भी' मेरे द्वारा लिखी गई दस कहानियों का संकलन है। इस संकलन की कहानियाँ विभिन्न विषय को लेकर चलती हैं। समाज को लगा हुआ कलंक स्त्री भृर्ण हत्या, विडम्बनात्मक प्रेम, बेरोजगारी, षड्यंत्र, हैवानियत की शिकार स्त्री की जीवन जीने के लिए संघर्ष, विकलांगों के प्रति मानवीयतायुक्त दृष्टिकोण, अवकाश प्राप्त होने के बाद गुमनामी जीने वाले लोग, तथा कहानी के माध्यम से ताशकंद की उज्बेकी भाषा सिखाना और वहाँ की स्थितियों से अवगत कराना आदि विषयों को कहानी के विभिन्न शीर्षकों के माध्यम से अभिव्यक्त करने का प्रयास किया हैं। इस संकलन की कई कहानियाँ देश विदेश की विभिन्न वेब पत्रिकाओं में छपी हैं। प्रवासी भारत, रूबरू, रेडियो सबरंग, अमेस्टल गंगा आदि।

मुझे आशा है कि सुधि पाठक मेरे जैसे अहिन्दी भाषी हिंदी लेखक को अवश्य पसंद करेंगे । मेरी कहानियों में चित्रित अधिकतर क्षेत्र महाराष्ट्र की भूमि रही है। मेरी कहानियाँ कल्पना और सत्य मिश्रित एवं कुछ सत्य घटनाओं पर आधारित कहानियाँ हैं। हो सकता है कि जाने अनजाने किसी के ह्रदय को ठेस पहुँच जाये । या संयोग वश यह कहानियाँ सीधे उनके जीवन से साम्य रखे। या फिर भावनात्मक रूप से ह्रदय को झकझोर दें। मुझे लगता है कि वे लोग इसे कहानी के रूप में ही लेंगें और मुझे प्रोत्साहित करेंगे।

कहानियाँ लिखते समय प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से जिन लोगों ने मुझे प्रोत्साहित किया, यहाँ मैं उनका नाम लेना उचित समझता हूँ। मा. पूर्व मुख्यमंत्री अशोकराव चव्हाण, मंत्री डी.पी. सावंत, प्राचार्य एन. व्ही. कल्याणकार, डॉ. रमा नवले, डॉ. अनीता रावत, डॉ. राधा गिरधारी, डॉ. जगदीश कदम, डॉ. अजय टेंगसे, डॉ. दामोधर मोरे, डॉ. हरीश अरोड़ा, सौ. सुमन सारस्वत, सौ. आशा पांडये, सौ. मोथिलेश जैन, डॉ. जप्रकाश मानस, डॉ. पंकज त्रिवेदी, डॉ. विजयसिंह ठाकुर, डॉ. शेखर घुंगरवार, डॉ. कासार रज्जाक, डॉ. एकांत श्रीवात्सव, डॉ. सतीश यादव, डॉ. सुनील व्यवहारे आदि । विशेष आभार मित्र, भाई डॉ. विवेक मिश्र जी के जिन्होंने मेरे जैसे अहिन्दी भाषी हिंदी लेखक के कहानी संकलन की भूमिका लिखना स्वीकार किया। ए. बी. एस. प्रकाशन के अनुराग पांडे जी का आभार की उन्होंने मुझे बेहद कम समय में किताब उपलब्ध करवाई। साथ ही जिन्होंने मुझे कहनियाँ लिखते समय अनुकूल वातावरण दिया। वे मेरे परिवार के सदस्य पिता गुलाबसिंग, माँ शकुंतला, भाई अनिल, संदीप, राजु, पत्नी वैशाली, पुत्री तनिष्का, पुत्र तन्मय जाधव।

डॉ. सुनील गुलाबसिंग जाधव
नांदेड 'महाराष्ट्र'

अनुक्रम

1

भ्रूण

"अभिजीत पेशंट बहुत सीरियस है। बच्चा या माँ दोनों में से किसी एक को बचाया जा सकता है।" शहर के जाने माने अस्पताल के ऑप्रेशन थियेटर से बाहर निकलते ही डॉक्टर ने अभिजीत को वह दु:खद समाचार सुनाया था। ऑप्रेशन थियेटर में अभिजीत की प्रेग्नंट पत्नी सुप्रिया जिंदगी और मौत से लड़ रही थी। दोनों में से किसी एक के बचने की संभावना थी। अब निर्णय आँखों से अश्रु बहा रहे अभिजीत पर था। अभिजीत का विवाह हुए अभी डेढ़ साल ही हुआ था। उसने पहली संतान को लेकर कई सपने देखें थे। अभिजीत और सुप्रिया आने वाले मेहमान के स्वप्न चित्र बनाते और उसमें रममान हो जाते थे। उनके कानों में अजन्मे बालक की किलकारियाँ गूँजती थी। अभिजीत तो बेहद प्रसन्न था कि उनके घर में एक नन्हा मेहमान आने वाला था। उसने पहले से ही कई खिलौनों से घर भर दिया था। उसके लिए अलग कमरा भी बनवाया गया था। छत पर चाँद-तारों के लुभावने चित्र अंकित किए गए थे। रात में उसे देखने पर आसमान का आभास होता था। सबकुछ नियोजन बद्ध तरीके से चल रहा था और अब समय आ गया था। उनकी प्रतीक्षा अब खत्म होने वाली थी। दोनों ऐक्सायीटेड थे कि बच्चा कैसा होगा? कैसे दिखेगा? मेरे जैसा या मम्मी के जैसा? दोनों में अक्सर इसी बात पर मीठी नोंक-झोंक होती थी कि, "बच्चा मेरे जैसा होगा? चेहरा-नैन-नाक सबकुछ मुझ पर जायेगा।" बार-बार के नोंक-झोंक से दोनों ने समझौता कर लिया था कि, "नाक तुम्हारे जैसा होगा और चेहरा मेरे जैसा....।" आने वाले बालक के अवयवों को पहले से ही दोनों ने विभाजित कर लिया था। सुप्रिया के पेट में पीड़ा शुरू हो गई थी। अस्पताल ले जाया गया था। पर कई घण्टे होने के बावजूद भी न उसकी पीड़ा थम रही थी और न ही बच्चे का जन्म हो रहा था। पीड़ा धीरे-धीरे दर्द का विशाल रूप बनकर उभर रही थी। आप्रेशन थियेटर से रुक-रुक कर सुप्रिया की दर्द भरी चीखें निकल रही थीं। बाहर अभिजीत का हाल बेहाल हुए जा रहा था। हर चीख के साथ अभिजीत के दिल की धड़कने और तेज होती जा रही थी। अभिजीत से चीखें बरदाश्त नहीं हो रही थीं। वे चीखें रुकने के बावजूद उसके कानों में सायरन जैसी आवाज गूँज रही थी। उसने अपने कानों पर दोनों हाथ रख लिए थे और उसके मुख से निकल पड़ा था। ...."नहीं....।"

एक लंबी आवाज जो सह न सकी, सुप्रिया की मरणांतक पीड़ाओं को। गंगूबाई ने उसके कंधे पर हाथ रखते हुए कहा था, ''साहेब, धीरज धरो, कुछ नहीं होगा। गणपती बप्पा हमारे साथ हैं। मेरा गणपती बप्पा कुछ नहीं होने देगा। मेरी मालकिन टनटन होकर बच्चे को लेकर बाहर आयेंगी देखना...।'' गंगूबाई अभिजीत के घर काम करने वाली बाई थी। सुप्रिया से बहन जैसा प्यार पाकर वह धन्य हो गई थी। उसका हर पल हर सुख-दु:ख में साथ रहता था। सुप्रिया और अभिजीत ने उसपर कई उपकार किए थे। यहीं कारण था कि गंगूबाई अपनी सुप्रिया बहन के लिए अस्पताल आयी हुई थी। जो अभिजीत को धीरज बंधा रही थी। जब डॉक्टर ने यह कहा कि दोनों में से कोई एक बच सकता है, तब उसके पैरों तले की जमीन खिसक गई थी। अचानक सब कुछ रुक गया था। और फिर वह महसूस करने लगा था कि सारी धरती गोल घूम रही है। सप्नों को ऐसा चकनाचूर होते हुए देख वह डॉक्टर से बिनती करने लगा था। अब उसके लिए डॉक्टर ही भगवान का रूप था। अभिजीत ने डॉक्टर के सामने गिड़गिड़ाते हुए कहा था, ''नहीं, नहीं ऐसा नहीं हो सकता। प्लीज डॉक्टर साहब दोनों को बचा लीजिए। मैं अपनी पत्नी से बेहद प्यार करता हूँ। मैं उसके बिना नहीं जी सकता।'' डॉक्टर ने अपनी मजबूरी को साफ-साफ बयान किया था कि वह कुछ नहीं कर सकता। पर अभिजीत मानने के लिए तैयार ही नहीं था। उसके बस में होता तो वह ब्रह्मा जी के विधान को बदलवा देता। पर वह ईश्वर पर यकीन भी तो नहीं करता था। उसकी नजरों में तो ईश्वर मर चुके थे। इसीलिए हम ईश्वर की प्रतिमा के सम्मुख दीए लगाते हैं और माला पहनाते हैं। ईश्वर तो इन्सानों में बसा है। डॉक्टर में बसा है। इस धरती का यदि कोई ईश्वर था तो वह सिर्फ डॉक्टर ही था। जो मरते हुए लोगों को जीवनदान देता है। वह डॉक्टर के सामने और भी बिनती करते हुए कहने लगा था, ''ऐसा नहीं कहिये साहब ! चाहे जितना भी खर्चा आये मैं देने के लिए तैयार हूँ। उन्हें बचा लीजिए, डॉक्टर साहब उन्हें बचा लीजिए....।'' अभिजीत गिड़गिड़ा रहा था पर डॉक्टर अपनी असमर्थता बता रहे थे। डॉक्टर का न मानता हुआ देख, वह उसके पैरों में पड़ गया था। पैरों को पकड़कर वह कहने लगा था, ''मैं आपके पाँव पड़ता हूँ। पर उसे बचा लीजिये।'' डॉक्टर अभिजीत की दशा को देखकर तैयार हो गया था। उसके बस में तो कुछ नहीं था। सिवाय कोशिश करने के अलावा उसके पास दूसरा कोई मार्ग नहीं था। पैरों पर पड़े अभिजीत को उठाते हुए डॉक्टर ने कहा था, ''उठ अभिजीत, जीवनदाता तो वह भगवान है, सबसे बड़ा डॉक्टर ! आप उनसे प्रार्थना कीजिये कि मैं दोनों को बचा पाऊँ। मैं चलता हूँ।'' कहते हुए डॉक्टर भीतर चला गया था। इस दौरान सुप्रिया की रह-रह कर दर्दनाक चीखें निकल रही थीं। अभिजीत निर्गुण ईश्वर भक्त था। वह बाहर खड़ा निर्गुण ईश्वर से प्रार्थना कर रहा था कि वह सुप्रिया और बच्चे दोनों को सही सलामत रखें। इस संकट

स रक्षा करें। उसे दर्द सहने की शक्ति देंवे। बाहर कभी बैठता तो कभी इधर-उधर खड़े होकर घूमने लगता था। उनकी नजर बार-बार उस ऑपरेशन थियेटर की ओर जा रही थी। उसके माथे से पसीने की बूँदे टपक रही थीं। पसीने से उसके कपड़े गीले हो गये थे। बार-बार वह हाथ में रुमाल लेकर चेहरे पर आने वाले पसीने को पोछे जा रहे थे। गंगूबाई उधर अपने आराध्य गणेश जी की प्रतिमा के सामने बैठ कर दोनों के सही सलामती की दुआ माँगने लगी थी। गणेश जी की वह प्रार्थना कर रही थी। वातावरण एकदम गंभीर बना हुआ था। भीतर सुप्रिया अपने आप से लड़ रही थी। तो डॉक्टर अपना सारा तजुरबा दाँव पर लगा रहा था। बाहर अभिजीत और गंगूबाई दोनों बेचैन थे। ईश्वर से प्रार्थना करने में व्यस्त थे। ऐसे में 'ऊँ ऑय ऊँ... ऑय की बालक की आवाज गूँज उठी थी। बालक की आवाज सुनकर बाहर बैठे दोनों के चेहरे के दु:खी, भयवाले विकार अब बदलने लगे थे। कुछ पल के लिए एक मुस्कुराहट की लकीर उन दोनों के ओठों से गुजर गयी थी। पर तुरंत प्रश्न चिह्न का मानों उनके मस्तिष्क पर प्रहार हुआ था। ''क्या हुआ। सुप्रिया बची या नहीं? बालक की तो आवाज आ रही थी पर सुप्रिया की अबतक दिल को चीरने वाली आवाज एक लम्बी चीख के बाद बंद कैसे हो गई थी। सुप्रिया के चीखों को शांत होता देख उनके भीतर भाँति-भाँति के विचार कौंदने लगे थे। एक अजीब से भय की शंका की शिकन उनके चेहरे पर साफ-साफ देखी जा सकती थी।

ऑप्रेशन थियेटर का दरवाजा अब तक जो बंद था। अब वह खुल गया था। डॉक्टर ने दरवाजा खोलकर बाहर कदम रखा था। अपने हाथों के दस्ताने उसने उतार दिये थे। मुँह पर मास्क बंधा हुआ था। वे ऐसी ही अवस्था में अभिजीत की ओर बढ़े चले आ रहे थे। अभिजीत और गंगूबाई भी उन्हें देखते हुए क्या हुआ? की मुद्रा में खड़े होकर डॉक्टर की प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा करने लगे थे। डॉक्टर ने अपने शरीर से सफेद कोट उतार दिया था। मुँहपर लगा मास्क वे उतार रहे थे। और इधर अभिजीत बेसब्री से इंतजार कर रहा था। डॉक्टर ने मास्क उतारते हुए शांत आवाज में कहा था, ''बधाई हो अभिजीत ! बधाई हो ! आपके प्यार और प्रार्थना ने दोनों को बचा लिया।'' अब तक भय की आशंका से ग्रस्त चेहरे पर मुस्कुराहट की लकीर से आगे बढ़ते हुए चेहरे ने हँसी और खुशी का रूप धारण कर लिया था। उस निर्गुण ईश्वर ने उसकी बात मान ली थी। वह बेहद खुश था। मानों उसे उस दिन दुनिया की सारी खुशी मिल गई थी। वह डॉक्टर के पैरो में पड़ गया था। डॉक्टर उसके लिए साक्षात भगवान बनकर आया था। पैरों में पड़कर अभिजीत कहने लगा था कि, ''डॉक्टर साहब आप साक्षात भगवान हैं। आप मेरी जिंदगी में भगवान बनकर आये हो। आप ने मेरी खुशियों को लुटने से बचा लिया। मैं आपका यह ऋण कैसे चुका पाऊँगा। मांगिये डॉक्टर साहब, आज जो माँगना है, माँगिये ! मैं अपना आज सबकुछ तुम्हें

सौपने के लिए तैयार हूँ। मैं तुम्हें नहीं बता सकता कि आज मैं कितना खुश हूँ। आज मुझसे कोई अपनी जिंदगी भी माँग ले तो, मैं खुशी-खुशी से देने के लिए तैयार हूँ। माँगिये डॉक्टर साहब आपको क्या चाहिए।'' डॉक्टर अभिजीत के इस कथन से गदगद भी हो रहा था। और अपने आप को भी आनंदित महसूस कर रहा था कि उससे जो संभव नहीं था। उसे संभव कर दिखाया था। उसने दोनों की जान बचाकर सबकुछ पा लिया था। उसने अभिजीत से कहा, ''मुझे कुछ नहीं चाहिए। तुम्हारे चेहरे पर की खुशी देखकर मैंने आज सबकुछ पा लिया। मैंने आज बच्चे और जच्चे को ही नहीं बचाया बल्कि अपने आप को भी बचाया है। मैंने डॉक्टर पर किए जाने वाले विश्वास को बचाया है। मैंने साक्षात भगवान के अंश को बचाया है, मैंने तुम्हारी लड़की को बचाया है।'' ''लड़की !'' लड़की का नाम सुनते ही अभिजीत की खुशी के सामने आसमान बौना हो गया था। उसने लड़का-लड़की भेद ना करते हुए आनंद सागर में गोते लगा दिये थे। जहाँ से खुशी-आनंद रूपी मोतियाँ भर-भर कर उसके हाथों में आ रही थी। गंगूबाई का चेहरा भी खिल गया था। दोहरी खुशी पाकर ''मालिक बधाई हो, मैंने कहा था ना कुछ नहीं होगा गणपति बप्पा सब ठीक कर देंगे। देखा गणपति बप्पा ने चमत्कार कर दिया।'' अभिजीत भी उसे बधाई दे रहा था। डॉक्टर को लाख-लाख दुवायें देते हुए और लड़की होने की खुशी को प्रकट करते हुए कहने लगा था, ''लड़की मुझे लड़की हुई है। आपने तो मुझे आज दुगनी खुशी दी हैं। दिल करता है कि मैं आपके हाथों को चूम लूँ।'' कहते हुए डॉक्टर के हाथ चूम लिये थे। ''हमारे खानदान में बरसों से लड़की नहीं हुई। यह लड़की नहीं साक्षात देवी है, देवी जिसने अपनी माँ को मौत की आघोष से बाहर खींचकर लाया है। आज मैं सारे शहर को मिठाई बाटूँगा। ढोल बजेगा, जश्न होगा। आज शहर में चूल्हा नहीं जलेगा। मेरी बेटी की आने की खुशी में सारे शहर को खाने की दावत दूँगा।'' उसने खुशी में शहर के लोगों को जितने वह बुला सकता था उन सबको दावत दी थी। गंगूबाई तो प्रसन्नता से जिलेबी के स्थान पर पेड़े बाँटने लगी थी। मानो उस घर में लड़की-लड़के से भी बढ़कर हो। उधर डॉक्टर अपने आप को धन्य मान रहा था। वह अभिजीत की खुशी को देखकर अतीत में खो गया था। वह अपने आप से बातें करते हुए कहने लगा था, ''आज मैं भी बहुत खुश हूँ। बरसों से जो काम मुझसे नहीं हो पाया, वह आज मैंने कर दिखलाया है। आज अभिजीत की पत्नी और बेटी के रूप में मानो अपनी लड़की और पत्नी को बचा लिया है।

''मैंने अपने जिंदगी में न जाने कितने पाप किये हैं। न जाने कितनी माँओं की कोख उजाड़ दी है। न जाने कितनी स्त्री भ्रूणों की गला रेतकर निर्मम हत्या कर दी। रुपयों के लालच में मैं भूल गया था कि भगवान के बाद डॉक्टर का दूसरा नाम लिया जाता है। मैंने डॉक्टर के नाम को कलंकित कर दिया। मैं इस दुनिया का सबसे बड़ा

पापी हूँ। अभागा हूँ। जिसने अपनी पत्नी से लड़के की अपेक्षा करते हुए गर्भ में पल रहे स्त्री भ्रूण की हत्या कर दी थी। आखिर नतीजा क्या हुआ। मेरी पत्नी भी उसके साथ स्वर्ग चली गई थी। जिस पत्नी को मैंने अपनी जान से भी ज्यादा चाहा था। इसी हाथों के कुकर्मो से मैंने उसे खो दिया।'' उस दिन वह खुश था कि उसने एक लड़की को बचाया। वह सोचने लगा था कि उसने एक लड़की को बचाया। वह सोचने लगा था कि आज स्वर्ग में उसकी पत्नी खुश हो रही होगी। उसे अपनी पति पर अभिमान हो रहा होगा। वह महसूस करने लगा था कि उसकी पत्नी जो आसमान में तारा बनकर चमक रही है, वह खुशी से मानो मुस्कुरा रही हो।

× × ×

अभिजीत की दीवार पर टंगी तस्वीर पर फूल चढ़ाते हुए आलोक और सुप्रिया के आँखों के सामने बीते कल की सारी तस्वीरें चलचित्र की तरह उभर रही थीं। अभिजीत की पाँच साल पहले एक दुर्घटना में मृत्यु हो गयी थी। आलोक सुप्रिया के हाथों में हाथ डालकर कह रहा था, ''आज अभिजीत को जाकर पाँच साल बीत गये। अब भी ऐसा लगता है कि अभिजीत हमारे ही भीतर कहीं जीवित है। अभिजीत जब अस्पताल में अंतिम साँसे गिन रहा था। तब उसने तुम्हारा हाथ ऐसे ही मेरे हाथ में देते हुए कहा था। भैया आलोक मैं तुम्हें अपनी अमानत सौंप रहा हूँ। मुझे पूरा यकीन है कि तू इन सब का खयाल रखेगा। तूझे वचन दे कि सुप्रिया को तू अपने जीवन भर साथ रखेगा। तू इसे अपनी पत्नी रूप में स्वीकार करेगा। तू भी मनू के जाने के बाद अकेला पड़ गया है। मेरे जाने के बाद मेरी चारों बेटियों को तू पिता का प्यार देगा। आलोक मेरी बेटियों को मैंने लड़कों की तरह पाला है। मैंने कभी भी लड़की-लड़का ऐसा भेद भाव नहीं किया है। तू इन्हें इतना पढ़ा लिखाना, इतना बड़ा बनाना कि इनकी प्रगति से आसमान भी बौना हो जाये। और उन लोगों को करारा तमाचा देना जो बेटियों को बोझ समझते हैं... चलता हूँ। इसी हाथों में उसने दम तोड़ा था.... और वह चला गया। हमें छोड़कर।'' आलोक जब अभिजीत की अतीत की यादों में खोया हुआ था तब वहीं गंगूबाई आलोक बातें सुन रही थी। उसकी आँखें तरल हो आयी थी। क्योंकि उसने गंगूबाई से अपनी बहन से भी ज्यादा बढ़कर सम्मान दिया था। उसने कभी उसके साथ नौकरों सा बर्ताव नहीं किया था। गंगूबाई भी इस प्रेम से विभोकर होकर इस परिवार को अपना परिवार मानने लगी थी। ''साहेब अभिजीत साहेब जैसा दूसरा आदमी इस दुनिया में कहीं नहीं मिलेगा। वो तो देव आदमी था। साहेब ! देखो कैसा देव बनकर बैठा है।'' कहते हुए उसने अपने डबडबाई आँखों को पल्लू से पोछा था। सुप्रिया और गंगूबाई की लड़कियाँ बड़ी हो चुकी थी। गंगूबाई ने अपनी बेटी का विवाह भी करवा दिया था।

अभिजीत की लड़कियाँ जब पंद्रह सोलह उम्र की होंगी तब अभिजीत उन्हें

छोड़कर चला गया था। उसने अपनी लड़कियों से कई सपने देखे थे। वह उनको सारी दुनिया की खुशियाँ उनकी झोली में डालना चाहता था। उनके लिए वे बेटों से बढ़कर थी। लड़कियाँ जैसे-जैसे बड़ी हो रही थीं वैसे-वैसे आस पड़ोस के लोग, रिश्ते, नातेदार अभिजीत को चार-चार लड़कियाँ होने के कारण ताने मारा करते थे। "लड़कियाँ बोझ होती हैं। लड़कियाँ पराया धन होती हैं। लड़कियाँ पिता का नाम रोशन नहीं करतीं। क्यों लड़कियों पर पैसे बरबाद करते हो।" आदि कई तानों के अक्सर प्रहार से अभिजीत कहीं-न-कहीं भीतर घायल होता जा रहा था। उस पर लोगों की ऐसी बातों का कोई असर नहीं पड़ता पर बार-बार के चुभने वाले शब्दों से उसका हृदय उन लोगों ने क्षतिग्रस्त कर दिया था। एक बार ऑफिस से खुशी-खुशी घर लौट रहा था। सड़क पर किसी ने उसे ताना दिया था। वह एक साथ कई चेहरे अपने ऊपर हावी होते हुए महसूस कर रहा था। एक साथ उसके मस्तिष्क में कई लोगों की आवाजें गूँज रही थी। चलते-चलते वह सड़क के बीचों-बीच आ गया था। उसका सर चकरा रहा था। वह महसूस कर रहा था कि सारी धरती गोल घूम रही है। धरती हिलने लगी है। सड़क से कई गाड़ियाँ तेज रफ्तार से गुजर रही थीं। कई बार अभिजीत मरते-मरते बचा था। गाड़ियों की आवाजें, भीड़ की आवाजों से पहले ही उसका मस्तिष्क दुर्घटना ग्रस्त हो चुका था। बस बचा था तो केवल शरीर। उसे भी एक तेज-तर्रार गाड़ी ने उड़ा दिया था। अब वह बार-बार के ऐसे प्रहारों से मुक्त होने वाला था। उसका शरीर गाड़ी की टक्कर से कई फुट ऊपर उछल गया था। पहले ही वार से उसके दोनों पैर टूट चुके थे। उसके सिर पर गंभीर चोट आ चुकी थी। घिसे जाने के कारण शरीर के कई स्थानों से खून की धारायें नदियों का रूप धारण कर रही थीं। देखते ही देखते सड़क का कुछ भाग लाल हो गया था। लोग इकट्ठा हो रहे थे। जिन्होंने यह दुर्घटना होते हुए देखा था। उनके मुख से डरावनी चीख निकल चुकी थी। कई महिलाओं की तो बोलती ही बंद हो गई थी। दिल की धड़कने तिगुनी, चौगुनी रफ्तार से धड़क रही थी। कुछ समझदार और संवेदनशील लोगों ने उसे अस्पताल पहुँचाया था। और कुछ लोगों को कोई लेना देना नहीं था। उन्होंने अपनी राह पकड़ ली थी। शुरू-शुरू में डॉक्टर ने गंभीर रूप से घायल अभिजीत को अस्पताल में भरती करवाने से इन्कार करवाया था। पर बाद में वह बिनती करने पर तैयार हो गया था, पर पहले रुपयों का बंदोबस्त और फार्म भरने के लिए कह रहा था। वे अनजाने लोग पहले ही ऐसे मामले से दूर रहते हैं। वे ऐसी बातों के कारण परेशान हो रहे थे। पर उन लोगों में एक समझदार निर्भीक युवक था। उसने डॉक्टर से कहा, "डॉक्टर साहब नये कानून के तहत तुम्हें पेशंट को बिना किसी पूछताछ के भर्ती करवाना होगा। ना करने पर जेल की सजा भी हो सकती है। यह कानूनन अपराध है।" उस युवक की बातों से उस डॉक्टर का सिर ठिकाने पर आ

चुका था। उसने मॉफी माँगते हुए तुरंत उसे अस्पताल में दाखिल करवा लिया था। पर उसे अस्पताल पहुँचाने और शुरु-शुरु में डॉक्टर ने भर्ती से इन्कार करवाने के कारण इस दौरान उसके खून बह जाने की वजह से बचने की संभावना अब अल्प ही रह गयी थी। सो आलोक, सुप्रिया, गंगूबाई, लड़कियों के सामने उसने अपनी अंतिम साँसों पर पूर्ण विराम लगा दिया था। समय बीत रहा था। समय के साथ अभिजीत की लड़कियाँ बड़ी हो रही थीं। सबसे बड़ी रीना अब बाईस साल की हो चुकी थी। रीना ने अपने हुनर को पहचाना था। वह रोज नृत्याभ्यास करती थी। नृत्य में अच्छे-अच्छे डान्सर उसके सामने पानी भरते हुए दिखाई देते थे। उसका चयन डान्स इंडिया डान्स में हुआ था। उसने मेहनत और लगन से ही टी.वी. शो डान्स इंडिया डान्स के कई प्रतियोगी को पराजित करते हुए फाइनल तक का सफल तय किया था। सभी लड़कियाँ एक से बढ़कर एक थीं। करीना की आवाज कोयल से भी मीठी थी। वह आवाज की दुनिया में अपना अस्तित्व बनाना चाहती थी। तो तीसरी मीना अभिनय करने में कुशल थी। वह जितनी दिखने में खूबसूरत थी, उतनी ही बुद्धिमान लड़की थी। उसने भी अपना लक्ष्य बना रखा था। वह फिल्मों में हिरोईन बनना चाहती थी। उसका संघर्ष जारी था। तो सबसे छोटी टीना हँसोड़ थी। खुद भी हँसती थी और दूसरों को भी हँसाया करती थी। उसके शब्दों के जादू से रोता हुआ इन्सान भी हँसने के लिए मजबूर होता था। चारों बहने आपस में बहुत प्यार किया करती थीं। एक दूसरे की खुशियों के लिए मर मिटती थी। कभी एक दूसरे की टांग खींचना तो कभी झूठ-मूठ लड़ती थीं। पर एक दूसरे के बिना नहीं रह सकती थीं। कुछ ही दिनों बाद रीना का फाइनल डान्स होने वाला था। परिवार के सारे सदस्यों को पूरा विश्वास था कि रीना डान्स इंडिया डान्स का फाइनल जरूर जीतेगी। रीना का सपना भी था कि वह जीते। और सारे जमाने को बता दे कि लड़कियाँ किसी भी क्षेत्र में पीछे नहीं। वह डान्य कोरियोग्राफर बनना चाहती थी। वह अपने लक्ष्य से केवल एक कदम ही दूरी पर थी। उस दिन सारे परिवार के सामने रीना नृत्याभ्यास कर रही थी। "अरे वाह दीदी ! तूने तो आज कमाल कर दिया। तेरा डान्स इतना अच्छा हुआ कि अब तुझे डान्स इंडिया डान्स के कॉम्पिटेशन के फाइनल में जीतने से कोई भी नहीं रो सकता।" ऐसे कहते हुए रीना के गले लिपट गई थी। ऐसे में गोलमटोल टीना कहाँ पीछे रहने वालों में से थी। सबकी लाडली-दुलारी टीना ने अपने शब्दों के जादू से वातावरण में हँसी की खुशबू का संचार किया था। वैसे वह घर में सबसे छोटी होने के कारण नटखट थी। जो शैतानी करने में अव्वल थी। सह स्वप्नरंजन करने लगी थी। "वह फाइनल का स्टेज दर्शकों से खचाखच भरा हुआ स्टेडियम जब रिजल्ट अनाउन्स किया जाएगा तब नीचे से एक ही आवाज गूँजेगी रीना..... रीना..... रीना..... तब दोनों में से किसी एक का नाम लिया जायेगा। डान्स

इंडिया डान्स की विनर है। धक्-धक् धक्-धक्-धक् धक्....।

"अरे जल्दी से रिजल्ट बोल दे टीना कहीं दीदी को अटैक न आ जाये।" मीना ने उतावलेपन में कहा था। तब टीना ने भी भाव खाते हुए, अकड़ते हुए अंदाज में कहा था, "हाँ तो मैं कहाँ थी। धक्-धक्, धक्-धक्, धक्-धक्.... और इस फाइनेल की विजेता हैं- दो बूँद जिंदगी के पाँच जनवरी को पास के ही शिशु केन्द्र में पाँच साल तक के बच्चों को जरूर पिलाईये।"

करीना ने टीना को टोकते हुए कहा था। "टीनू यह सब क्या है?" इस पर टीना अपने ही अंदाज में कहने लगी थी। "दीदी, जब फाइनल रिजल्ट चल रहा होगा, तब बीच में ही टी.वी. पर ॲडव्हर्टाइज होगा की नहीं। और भाई दर्शकों को इतनी आसानी से रिजल्ट कैसे बतायेंगे। थोड़ी टी.आर.पी. चाहिए ना।" जीतने से पहले ही टीना ने अपनी दीदी रीना को विजेता घोषित कर दिया था। उसके अभिनय का साथ देते हुए सभी परिवार के सदस्यों ने तालियों से विजेता का जश्न मनाया था। छोटी ने टेबल पर रखा फ्लावर पॉट उठाया और अपने माँ और पिता आलोक का हाथ पकड़कर उन्हें विजेता की ट्राफी देने के लिए फ्लावर पॉट की ट्राफी उनके हाथों में थमा दी थी। उन्होंने भी अपने बच्चों के खेल में साथ दिया था। ट्राफी रीना को दी गई थी। जब घर में खुशनुमा माहौल चल रहा था। ऐसे में गंगूबाई भी आ चुकी थी। गंगूबाई उस दिन लगभग एक माह के बाद आ रही थी। गंगूबाई को देखकर सुप्रिया और उनका परिवार भी खुश हो गय था। पर उनकी खुशियों के सामने गंगूबाई का चेहरा मुर्झाया हुआ, निराश और दुःखी दिखायी दे रहा था। सुप्रिया ने उससे उसके निराशा के कारण को जानना चाहा था। कई दिनों बाद लौटी गंगूबाई को दुःखी देखकर सुप्रिया और परिवार के मन में प्रश्न चिह्न उपस्थित कर रहा था। जब सुप्रिया, आलोक और लड़कियों ने एक साथ जोर देकर पूछा था। तब वह आँखों से निकलने वाले आँसुओं को पोछते हुये रुआसी आवाज में कहने लगी थी। "साहेब, मेरी लड़की को जब मुलगी हुई थी, तब मैं खुश मेरा पति भी खुश था। उसने खुशी से शराब छोड़ दी। पर "वह जोर-जारे से रोने लगी थी। सुप्रिया ने उसे पानी पिलाते हुए सांत्वना दी और आगे बताने के लिए कहा था। "मेम साहेब, उसके ससुराल वाले खुश नहीं होंगे। उन्होंने मेरी मुलगी को यह कहकर भेजा कि पहले ही तीन-तीन लड़कियाँ हो चुकी हैं। अब की लड़का ना हुआ, तो घर लौटकर मत आना। समझले तेरा पति हमेशा के लिए मर गया है। अब तुम्ह ही बताओ साहेब, मेम साहब मैं क्या करूँ? इसीलिए मैं इतने दिन काम पर नहीं आयी।" वह रो रही थी। सुप्रिया, आलोक और लड़कियों को यह बात सुनकर बेहद दुःख हुआ था कि आज के विज्ञान, तकनीक, आंतरिक्ष के युग में ऐसी सोच। एक ओर हमारा देश चाँद, मंगलन पर बस्ती करने के बारे में सोंच रहा है। दूसरी ओर ये किस दुनियाँ में जी रहे हैं लोग? गंगूबाई

के शब्दों से आहत मीना कहने लगी थी। "माँ ! क्या सच में लड़कियाँ इतनी बोझ होती हैं। लड़की होगी तो क्या हो जायेगा? कौन-सा आसमान टूट पड़ेगा ? जो उसके ससुराल वाले उसे अपने घर नहीं लेंगे ? माँ उसकी सास भी तो एक स्त्री ही है ना ! क्या, एक स्त्री दूसरे स्त्री की वेदना और पीड़ा को नहीं समझ सकती? रीना भी अपने मन में उठने वाले प्रश्नों को अपनी माँ के सम्मुख रखते हुए कहा था। "हाँ माँ ! लोग कहते हैं कि लड़कियाँ बोझ होती हैं। वह परायाधन होती हैं। कहते हैं, लड़कियाँ पढ़ लिखकर क्या करेंगी? चूला, चक्की और घर गिरस्ती ही तो संभालना है।" "मम्मा, लड़कियों को ही क्यों मार दिया जाता है। जन्म होने से पहले ही, आँख खुलने से पहले ही उसकी आँखें क्यों बंद कर दी जाती हैं। जिसने अभी दुनिया भी देखी नहीं थी। उस अजन्मे भ्रूण की गला रेत कर हत्या....? घृणा है, उन लोगों से मम्मा मुझे घृणा है। लड़कियाँ तो आज हर क्षेत्र में आगे बढ़ रही हैं ना ?" अब तक सब की बातें सुन रहे आलोक की जबान कब तक समाधि में लीन ओंठों के द्वारा के परे रहने वाली थी। उसने अपनी बेटियों का हौसला बढ़ाते हुए कहा था।

"बेटी, तुम सच कह रही हो, बेटियाँ आज किसी भी मायनों में लड़कों से कम नहीं होतीं। मेरी ही बेटियों को ले लो। सभी एक से बढ़कर एक। सभी अपनी माँ और पिता का नाम रोशन कर रहे हैं। रीना डान्स में अव्वल है, एक दिन वह बहुत बड़ी कोरियोग्राफर बनेगी। करीना सींगर बनेगी। मीना फिल्मों में अभिनेत्री और टीना हर दुःखी इन्सान को हँसाएंगी।"

× × ×

रीना ने डान्स इंडिया का कॉम्पिटेशन जीत लिया था। उसने अपने साथ अपने परिवार, पड़ोसियों, शहर का नाम रोशन किया था। वह सारे न्यूज चैनलों पर छा गयी थी। सारे समाचार पत्रों में उसके ही गुणगान गाये जा रहे थे। उसे अब पूरा देश जानता था। वह युवा दिलों की धड़कन बन चुकी थी। प्रशंसा और बधाइयाँ देने वालों की रीना के घर पर तांता लगा हुआ था। जिन लोगों ने कभी अभिजीत को चार-चार लड़कियाँ होने पर ताने कसे थे। जीना दूभर कर दिया था। आज वे ही लोग रीना को बधाई देने के लिए आलोक के घर आये हुये थे। "आलोक जी, आपकी लड़कियों ने आपका ही नहीं बल्कि हमारा भी नाम सारी दुनिया में रोशन कर दिया है।" "लड़कियाँ होकर कहाँ से कहाँ पहुँच गयी हैं। और हमारे लड़के जिन पर हमने नाज किया था। उनके जन्म पर दीवाली जैसा त्यौहार मनाया था। हम बेहद खुश थे कि हमें लड़की नहीं बल्कि लड़का हुआ था। पर आज वह निकम्मों की तरह घर निट्ठले बैठे हैं। हमने चार-चार लड़कियाँ होने पर अभिजीत और आपका मज़ाक उड़ाया था। आज हम आपसे माफी माँगते हैं।" पड़ोसियों द्वारा सुप्रिया के परिवार से माफी मांगी जा रह थी। पश्चाताप ने उन्हें अलोक के परिवार के नज़रों में बड़ा बना

दिया था। वे देर आये पर दुरुस्त आये थे।''

''काश हमारे यहाँ भी एखाद लड़की होती। आलोक जी आप सच में ही भाग्यवान हैं। आपके यहाँ इतनी होनहार लड़कियों ने जन्म लिया है।'' अलोक ने अभिजीत से किया हुआ वादा पूरा किया था। उसकी आँखों से खुशियों के आँसू छलक रहे थे। वह उस दिन बेहद प्रसन्न था।

अस्पताल के ऑप्रेशन थियेटर में गंगूबाई की लड़की प्रसव पीड़ा से कराह रही थी। भीतर से बच्चे के रोने की आवाज आ रही थी। इधर गंगूबाई परेशान थी कि लड़का हुआ या लड़की। वह समझ नहीं पा रही थी कि वह खुशियाँ मनाये या फिर अपने नसीब को कोसते हुए रोये। वह द्विधा मनःस्थिति में बाहर बैठी आलोक के बाहर आने की बेसब्री से प्रतीक्षा कर रही थी। कब डाक्टर साहेब बाहर आयेंगे और कब उसे समाचार देंगे।

× × ×

आलोक ऑप्रेशन थियेटर से बाहर आया था। उसने गंगूबाई की ओर देखते हुए कहा, ''बधाई को गंगूबाई तुम नानी बन गयी हो। मिठाई, बाँटिये, मिठाई लड़की हुई है। तुम्हारे घर लक्ष्मी आयी है।'' यह बात सुनना ही था कि गंगूबाई को जोर का झटका लगा था। उसने अपने दोनों हाथ माथे पर रखते हुए नीचे बैठ गयी थी। 'क्या, लड़की हई है। अरे, माझ्या देवा ! यह क्या मेरे नसीब में आया। मैंने पिछले जन्म में जरूर कोई पाप किये थे, जो आज ये दिन देखने पड़ रहे हैं।'' वह छाती पर हाथ से पीटते हुए रोने लगी थी।वह अपनी लड़की के दुर्भाग्य पर आश्रु बहा रही थी। उसकी नज़रों के सामने उसके ससुराल वालों की कही हुयी सारी बातें विक्राल रूप में तांडव कर रही थी। उसको इस तरह पीड़ित देखकर आलोक उसे समझा रहा था।'' गंगूबाई, इस मासूम ने क्या पाप किया है? जो इनके आने से इतना दुःखी हो रहे हैं। देखो जरा उसके मासूम चेहरे की तरफ देखो। और तुम इसके आने पर छाती पीटकर रो रही हो। यह तो प्रकृति का अनमोल उपहार है।'' उसकी आँखों से बहते दुःख हताशा, निराशा के आँसू भीतर से कुछ भयानक सोंच रहे थे। कुछ ऐसा जिसे होना नहीं चाहिए। जिसकी कल्पना हम सामान्य रूप से नहीं कर सकते थे। वह डॉक्टर के पैरों में गिरकर गिड़गिड़ाते हुए कहने लगी थी, ''यह मेरे लिए उपहार नहीं डॉक्टर साहेब, यह मेरे लिए शाप है शाप। डॉक्टर साहेब मैं आपके पाँव पड़ती हूँ। आप इसे मरा हुआ घोषित कर दीजिये।'' आलोक की बोलती ही जैसे बंद हो गई थी। यह बात उसके कल्पना के परे थे। अनपेक्षित यह सब कुछ घटित हो रहा था। आलोक उसे समझा रहा था और गंगूबाई अड़ी हुई थी कि उसे मरा हुआ घोषित कर दें। एक पगली जैसी स्त्री जो अब तक अस्पताल के किसी कोने में बैठी यह सारा दृश्य देख रही थी। वह दौड़ते हुए आयी और कहने लगी, ''मुझे दे दो यह बच्चा।

मैं इसे पालती हूँ। दे दो, दे दो। इस दुनिया में ऐसे कई निसंतान लोग हैं, जो संतान के लिए तरस रहे हैं। उनके सामने लड़की-लड़का भेदभाव नहीं वे तो बस संतान का सुख चाहते हैं। मुझे दे दो, मुझे दे दो। उसी पगली लड़की की बात सच तो थी पर आलोक ने उसे वहाँ से भगा दिया था। ''ऐ भाग यहाँ से, गंगूबाई मैं इसे गोद लूँगा। मैं इसे पालूँगा। ना मैं इसे मरने दूंगा, ना मैं इसे अनाथों की तरह जीने दूँगा। मैं इसे पिता का प्यार दूंगा। यह मेरा पश्चाताप होगा। मेरे ही कारण मेरी पत्नी और पुत्री इस दुनिया को छोड़कर चले गये। इसमें मैं अपनी मरी हुई बेटी का चेहरा देख रहा हूँ। इससे मेरी पत्नी की आत्मा को शान्ति मिलेगी। और मुझ पर लगा हुआ कलंक भी कम होगा।'' आलोक सुबह जल्दी उठ गया था। वह आइने में देखकर सेविंग कर रहा था। बिस्तर पर लेटी सुलोचना नींद से चीखते हुये जागी थी। आलोक दौड़कर प्रेग्नंट सुलोचना के पास आया था।

''क्या हुआ सुलोचना''

चेहरा पसीने से तर्र हो गया था। घबराई, साहमाई-सी आलोक के गले लिपटते हुए उसने कहा था ''आलोक मैंने एक भयानक सपना देखा.....।''

♦

2
एक कहानी ऐसी भी

अहाते में हाथों में किताब पकड़ पढ़ाई कर रहे मनेश को मिताली ने अपने माता-पिता से नजर बचाते हुये हाथों के इशारे से फेसबुक पर आने के लिए कहा था। मनेश भी इसी बात की प्रतीक्षा में था कि मिताली कब बाहर आयेगी और वह उसे कब देखेगा। वसे भी वह लगातार मोबाईल की घड़ी की ओर देख रहा था। सुबह के छह बज चुके थे। उनके मुख दर्शन का यही समय होता था। जैसे सूर्य के उपासक प्रातः जल्दी उठकर सूर्य को देख जल अर्पण करते हुए प्रणाम करते है। वैसे ही ये दोनों दिन ढलने के बाद सूर्योदय की प्रतीक्षा में पलक पावड़े बिछाये रहते थे। अक्सर दोनों के माता-पिता कहा करते थे कि, सुबह जल्दी उठना चाहिए। सुबह जल्दी उठने से सेहत और स्मरण शक्ति बढ़ती है। दोनों के माता-पिता इस बात से खुश रहा करते थे कि दोनों जल्दी उठकर पढ़ाई करते हैं। एक बात तो अच्छी थी कि एक-दूसरे की चाहत में वे प्रातः जल्दी उठ जाया करते थे। मिताली और मनेश दोनों आमने-सामने एक ही गली में रहा करते थे। एक ही उम्र, एक ही कॉलेज, एक ही समय घर से जाना और एक ही समय घर लौट आना होता था। दोनों परभणी शहर के एक जानेमाने कॉलेज में बी.ए. की पढ़ाई कर रहे थे। बचपन से साथ ही में पल-बढ़ने से दोनों के दिल कब मिल गये पता ही नहीं चला था। वे दोनों एक-दूसरे के बगैर नहीं रह सकते थे। बचपन की दोस्ती कब, प्यार में परिवर्तित हो गयी थी वे दोनों जान भी न पाये थे।

मिताली एक ब्राह्मण परिवार से थी। उसके पिता परभणी शहर के जाने-माने व्यापारी थे। सो मिताली को कभी किसी बात की कमी नहीं महसूस हुई थी। उनका स्वभाव बड़ा ही कड़क था। उनके परिवार के सभी सदस्य उनसे डरते थे। उन्होंने अपने परिवार को अनुशासन में रखा था। उनके बनाये नियमों का उल्लंघन मतलब उनके क्रोधाग्नि का भाजन होना था। माँ नित्य नियम से पूजा अर्चना करती थी। वह धार्मिक तो थी पर उसमें सहिष्णुता भी थी। मिताली को उससे छोटा एक भाई और बहन थी। परिवार में एक ही सदस्य ऐसा था जो अपने पिता के अनुशासन को अक्सर तोड़ता था। वह सदस्य थी मिताली। नियमों के उल्लंघन से वह डांट-डपट का शिकार होती थी। पर उसने जैसे ठान ही लिया हो कि अपने पापा के बनाये नियमों को ना माने। पापा के लाख कहने पर भी उसने मनेश से बातें करना उसके साथ

आना-जाना नहीं छोड़ा था। इस बात पर कई बार पापा ने मिताली को रोका, डांटा था। उसके न मानते देख पापा ने उसे नज़र अंदाज कर दिया था। यह सोंच कर कि मनेश क साथ रहने से मिताली सुरक्षित ही रहेगी। मनेश के रहते अब उन्हें मिताली की चिन्ता नहीं होती थी। मिताली के पापा उच्च विद्या विभूषित थे। कहीं न कहीं इसका परिणाम हो था कि उन्होंने मिताली को मनेश से बात करने की छूट दे रखी थी।

मनेश के पिता एक सरकारी अधिकारी थे। ऑफिस में उनका औद्य उच्च स्तर का था। उन्हें अपने जीवन में बेहद संघर्ष करना पड़ा था। क्योंकि वे दलित थे। उन्हें अक्सर पुरवाग्रह दुषित मानसिकता के अधिकारियों का शिकार होना पड़ा था। अपनी मेहनत और परिश्रम से सबसे बड़ा औदा हासिल किया था। मनेश उनकी एकलौती सन्तान थी। उसकी परवरिश में उन्होंने कोई कसर नहीं छोड़ी थी। बचपन से ही उन्होंने मनेश को सिखाया था कि, "अन्याय मत सहना, अन्याय के प्रति आवाज उठाना, हमेशा सच्चाई के मार्ग पर चलना, अपने से बड़ों का आदर करना, कभी कोई गलत काम न करना।" मनेश संस्कारों और आदर्शों के साँचे में ढलकर बड़ा हुआ था। उसने अपने पिता की बात कभी नहीं टाली थी।

मिताली जितनी सुंदर और बुद्धिमान थी। मनेश भी किसी राजकुमार से कम न था और पढ़ाई-लिखाई में उसका कोई-हाथ भी नहीं छू सकता था। उस दिन सुबह जल्दी उठकर बाहर आहाते में टहलते हुये किताब पढ़ रहा था। तब मिताली को फेसबुक पर आने के लिये इशारा करने पर मोबाईल का इंटरनेट शुरू कर फेसबुक खोल दिया था।

hi – मिताली

hi – मनेश

hru – मिताली

lmf9 – मनेश

"क्या कर रहे हो यार, किताबें पढ़कर पंडित बनना है क्या? – मिताली

"पंडित नहीं पर सच्चा प्रेमी बनना है। और पंडित से ही सात फेरे लेना है।" मनेश। "आज पिक्चर चलते हैं। शाहरूख की नई फिल्म लगी है। अंह चिन्ता मत करना टिकट मैं ही निकालूँगी। ग्यारह बजे ज्योति चित्र मंदिर पक्का।" मिताली।

"पक्का..... लॉक कर दिया जाये.... डन, डना डन डन.... ग्यारह बजे मिलते हैं। बाय.....।" मनेश

"बाय ।" मिताली

उस दिन दोनों कॉलेज जाने की बजाये फिल्म देखने चले गये थे। मनेश ने फिल्म जाने की जानकारी अपने पिता को दे दी थी पर मिताली बिन बताये फिल्म का आनंद उठा रही थी। ऐसा कई बार होता रहा था। कभी गार्डन तो कभी होटेल,

कभी शॉपिंग तो कभी पार्टी हुआ करती थी । दिन बीत रहे थे। उनका प्यार गहराई की चरम सीमा को स्पर्श कर रहा था। देखते ही देखते एम.ए. का अंतिम वर्ष आन पड़ा था।

अब उन्हें भविष्य की चिन्ताएँ सताये जा रही थीं। दोनों ने सपने देखे थे। एम.ए. होने के बाद कोई नौकरी कर लेंगे और फिर विवाह करेंगे। साथ ही वे इस बात से भी चिन्तित थे कि उनका विवाह कैसे होगा? वे विजातीय थे। मनेश ने मिताली से कई बार कहा था, "मिताली मैं दलित और तू ब्राह्मण हमारा मेल कैसे होगा? क्या तुम्हारे पिता इस सम्बन्ध को सम्मति प्रदान करेंगे? इस पर मिताली मनेश के हाथ को पकड़कर कहती, "हमारे मम्मी पप्पा नहीं मानेंगे तो हम भागकर विवाह करेंगे।" मनेश इस बात से कतई सहमत नहीं था कि भाग कर विवाह करें। वह कहता था कि, "जिन माता-पिता ने हमे पाल-पोसकर बड़ा किया, जिन्होंने हमें कभी किसी बात की कमी महसूस नहीं होने दी। हमेशा पलकों पर बिठाये रखा। कई अक्षम्य गलतियों को माफ कर गले लगाया। नहीं मैं ऐसा नहीं कर सकता। मैं अपने माता-पिता को धोखा नहीं दे सकता। जब समय आया उनकी देखभाल करने का, उनकी इच्छाओं को पूरा करने का ऐसे समय में कायरों सा भाग जाऊँ। यह कदापि संभव नहीं हो सकता। जब तक हमारे माता-पिता इस विवाह के लिये राजी नहीं होंगे तब तक मैं कुँवारा रहूँगा।" मिताली को ये सारी बातें किताबी और आदर्श लगते थे। उसे पता था कि इस रिश्ते को उसके पिता कभी भी सहमति नहीं दर्शायेंगे। भले ही उसकी जान क्यों न लेनी पड़े। आगे चलकर ऐसा ही हुआ जब यह बात दोनों के घर पता चल गयी तब दोनों के माता-पिता ने दोनों पर पाबंदियाँ लगा दी थीं। मिताली का घर से बाहर निकलना बंद करवा दिया गया था। वह अपने ही चार-दिवारों वाले कमरे में प्यार करने की सजा पा रही थी। मनेश कॉलेज तो जा रहा था पर उसे देखे बिना, उसके बिना जीना सूना-सूना लगने लगा था। उसने अपने पिता से इस सन्दर्भ में साफ-साफ बात की, "पिताजी मैं मिताली से विवाह करना चाहता हूँ। मैं उसके बिना नहीं रह सकता। मैंने मन ही मन उसे अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार कर लिया है। उसके बगैर मैं आजीवन कुँवारा रहूँगा।" उसके पिता ने मनेश को बहुत समझाने की कोशिश की थी, "बेटा यह संभव नहीं हो सकता। हमारे जात बिरादरी में मिताली से कई गुणा खूबसूरत लड़कियाँ हैं। तेरा विवाह खूब धूमधाम से मनायेंगे। तू उसे भूल जा बेटा, वे कहाँ और हम कहाँ। वे जाति से ब्राह्मण और हम दलित। हमारा मेल चाहकर भी नहीं हो सकता। मिताली के पिता इस रिश्ते को कभी भी नहीं मानेंगे। अपनी जान दे देंगे पर अपनी बेटी का हाथ किसी दलित के हाथों नहीं सौपेंगे।

मनेश का मिताली के प्रति बेतहाशा प्रेम को देखकर उन्होंने विवाह के लिये

हाँ तो कर दिया था पर सही संकट का पहाड़ तो मिताली के पप्पा थे। वे तो क्रोध के मारे आग बबूला हो रहे थे। उनका बस चलता तो मनेश के टुकड़े-टुकड़े कर गिद्धों को खिला देते। पर इसकी सजा वे मिताली को दे रहे थे। जब मिताली ने अपने पिता के सम्मुख मनेश से प्रेम और विवाह की बात की तो उन्होंने उसे एक कमरे में बंद कर दिया था और खूब पिटाई भी की थी। पिटाई से उसके शरीर पर निशान पड़ चुके थे। उन्होंने मिताली के बाहर निकलने और मनेश से बातें करने पर अपनी जान देने की धमकी दे डाली थी। "मिताली तूने यदि इस कमरे के बाहर कदम रखा और उससे बात करने की कोशिश की तो मेरा मरा हुआ मुँह देखोगी। तूने मेरे विश्वास को तोड़ा है। मैंने तेरी हर गलती माफ की थी। तुझे कहीं घूमने-फिरने जाने से कभी रोका नहीं था। ना ही कभी लड़कों से बाते करने से मनाई की थी। तुझे प्यार करना ही था तो अपने ही जाति के किसी लड़के से करती। मैं तेरा विवाह सहर्ष करवा देता। पर तुझे प्यार करने के लिये वह दलित लड़का ही मिला। क्या सारी दुनिया के ब्राह्मण लड़के मर गये थे। जो तू उस दलित से विवाह करना चाहती है। खबरदार जो तूने कोई गलत हरकत की तो।" गुस्से में आँखों से आग उगलते हुये वे उस दिन सारा दिन भूखे रहे थे।

कुछ दिनों के बाद उन्होंने अपने ही जाति के एक लड़के से रिश्ता पक्का करवा दिया था। तो उधर मनेश के पिता की बदली औरंगाबाद होने से मनेश अपने हृदय पर पत्थर रखते हुये चला गया था। जाने से पहले मिताली ने भागकर विवाह की बात कही थी पर मनेश का वही जवाब था। "जबतक तेरे पिताजी स्वयं मुझे स्वीकार नहीं करेंगे मैं विवाह नहीं करूँगा। मैं आजीवन कुँवारा रहूँगा।"

मनेश के औरंगाबाद जाने के बाद मिताली के पिता ने मिताली की सगाई अपने ही जाति के रूपेश के साथ जबरन करवा दी थी। मिताली के पिता ने कई बार मिताली को समझाने के बाद भी जब वह नहीं समझ रही थी तब उसे इमोशनली ब्लैकमेल करते हुये सगाई के लिये राजी किया गया था। रूपेश ऊच्चविद्या विभूषित लड़का था। उसकी अपनी गाड़ियों का शोरूम था। वह मनेश से दिखने और बुद्धि में कई गुना बढ़कर था। उसकी व्यवहार कुशलता और बुद्धि से उसने कम समय में सफलता की चरम सीमाओं को छुआ था। मिताली की पिता की नजरों में इससे बेहतर वर हो ही नहीं सकता। वह लाखों में एक हीरा था।

जब रूपेश और मिताली को एकांत में वार्तालाप करने का मौका मिला तब मिताली ने अपने बारे में सब सच बताते हुये कहा था। "मैं मनेश से बहुत प्यार करती हूँ। मैंने उसे मन ही मन पति मान लिया है। उसके बिना मेरी जिंदगी में दूसरा कोई नहीं आ सकता। आप से सगाई अपने माता-पिता के लिये की थी। आप यदि मुझे शरीर से भी प्राप्त कर लो पर मन से मैं कभी भी आपकी नहीं हो पाऊँगी। मेरे हृदय,

मन-मस्तिष्क, आत्मा में मेरे रोम-रोम में मनेश बसा हुआ है। मुझे माफ करना मैं आपको अपना पति नहीं मान सकती। आशा है आप मेरी भावनाओं को समझोगे।''

रूपेश को इस बात की भनक पहले ही लग चुकी थी पर यह पता नहीं था कि मिताली मनेश को इस कदर चाहती है।

उसने अपना सर्वस्व मनेश के नाम पहले ही कर दिया था। सामने खड़ा था तो सिर्फ मांस से भरा हुआ आत्मविहीन शरीर। जब रूपेश को मिताली के मुँह से यह सबकुछ पता चला तब उसके हृदय को बहुत बड़ी ठेस पहुँची थी। वह मात्र शरीर से विवाह नहीं करना चाहता था। वह चाहता था उसे तन और मन से अपनाना। मन तो मनेश के पास था और तन....। उसने अपने उदात्त हृदय का परिचय देते हुये कहा था, ''मुझे क्षमा करना मिताली, मुझे पता नहीं था कि तुम मनेश से इस कदर बेपनाह प्यार करती हो। उसके बिना नहीं जी सकती हो। तुम दो तन एक जान हो और ऐसे सच्चे प्रेमी को एक दूसरे से जुदा करने से बड़ा पाप कौन सा हो सकता है। मैं ऐसा पाप नहीं कर सकता। मैं इस पाप का भागीदार नहीं बन सकता। मिताली सच कहूँ तो मैं भी तुम्हें चाहने लगा था। मैंने भी तुम्हें अपने दिल से पत्नी मान लिया था। कहा जाता है सच्चा प्यार त्याग में है। हम जिसे चाहते हैं, उसे हर पल खुश रखने में है। उसकी हर जायज इच्छा को पूरी करने में है। मैं तुम्हारी मदत करूँगा। तुम्हें मिलाने की कोशिश करूँगा। मनेश ने विवाह की तिथि को एक साल के लिये आगे बढ़ा दिया था।

मिताली की सगाई होने के बावजूद भी उसमें कोई परिवर्तन नहीं आया था। वह अब भी मनेश की यादों में खोयी रहती थी। उसका न खाने में मन लगता था ना ही और किसी बात में। वह रात-रात भर जागा करती थी। उसके विरह में वह सूखकर काँटा बन गयी थी। वह अब अक्सर बीमार रहने लगी थी। नींद में बीमारी की अवस्था में उसकी जबान पर एक ही नाम रहता था। वह था मनेश का। उसके पिता को मिताली की यह अवस्था देखी नहीं गयी थी। एक दिन उन्होंने मिताली से कहा था, ''मिताली तू जीत गयी। मैं हार गया। मुझे स्वीकार है तुम्हारा रिश्ता। जा मनेश से कह दे कि मेरे पिता हमारे विवाह के लिये मान गये हैं। अब तू जल्दी से जल्दी ठीक हो जा। तू ऐसी अवस्था में उससे कैसे मिलने जा सकती है। मनेश क्या कहेगा? तेरे पिता ने तेरा क्या हाल बना दिया है।'' मिताली पहले इसे झूठ समझ रही थी कि, ''मुझे ठीक करने के लिये उन्होंने ऐसे कहा है।'' जब उसकी माँ ने भी समर्थन की बात कही तब उसे यकीन हो चला था कि उसके पिता सच बोल रहे हैं। वह मन ही मन कह रही थी कि ऐसे पिता हर लड़की को मिले।'' धीरे-धीरे उसके स्वास्थ में सुधार हो रहा था। वह दिन अब आ गया था। जब मनेश से मिलने के लिये वह औरंगाबाद जाये। सोमवार की सुबह मराठवाड़ा एक्सप्रेस ट्रेन से जाना

तय हो चुका था। उधर मनेष तक मिताली के पिता ने यह खबर पहुँचा दी थी। उसकी भी खुशी का अब ठिकाना न रहा था। दोनों को मानो सारी दुनिया की खुशियाँ मिल गयी थीं। मिताली के पिता को भी मनेश की खूबियाँ भा गयी थीं। वह चाहता तो मिताली को कब का भगाकर ले गया होता। पर उसने ऐसा नहीं किया। उसने मिताली के परिवार की भी इज्जत रखी थी और मनेश से ज्यादा समझदार लड़का और कौन मिल सकता था। जो मिताली की हर पसंद ना पसंद का बचपन से जानता था। वह उसका हरपल ख्याल रखता था। वही उसका सही जीवन साथी बनने लायक है। मिताली के पिता ने स्वयं होकर मनेश का मोबाईल नंबर दिया था।

रविवार की सारी रात दोनों ने जाग कर निकाली थी। वह रात्रि उनके लिये मानो दुश्मन के समान लग रही थी। रात ढलने का नाम नहीं ले रही थी। मानो वह रात दोनों के मिलन में विलन का काम कर रही हो। बहुत प्रतोक्षा के बाद सूर्य की किरणां ने उसका स्पर्श किया था। मानो वह कह रहा हो अब दुःख, निराशा, विरह को रातें खत्म हो गईं हैं, सुख, आशा और मिलन का दिवस तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है।

ट्रेन के इंजिन ने सीटी बजाते ही ट्रेन परभणी से औरंगाबाद की ओर चल पड़ी थी। मिताली अगले तीन घण्टों में मनेश के पास पहुँचने वाली थी। उस दिन ट्रेन की रफ्तार कुछ कम थी। मिताली को लग रहा था कि आज ही इसे धीमी गति से चलना था। ट्रेन की धीमी गति उनके मिलन में बाधायें उपस्थित कर रही थी। वह सोच रही थी कि यदि उसे पंख होते तो वह तुरंत उड़कर मनेश के पास पहुँच जाती। तो कभी लगता की पवनपुत्र हनुमान जैसी शक्ति उसके पास होती तो वह वायु से भी तेज गति से वहाँ पहुँच जाती। मन के अथाह सागर में विभिन्न विचार गोते लगा रहे थे। सारे विचारों की एक ही मंजिल थी कि वह मनेश तक जल्दी पहुँच जाये। उसने अपने अराध्य ईश्वर से प्रार्थना की कि ट्रेन की गति तेज हो जाये। वह सोच ही रही थी कि ट्रेन ने रफ्तार पकड़ ली थी। जैसे ही ट्रेन ने रफ्तार पकड़ ली थी। वैसे ही उसके हृदय में एक अलग प्रकार की खुशी ने संचार किया था। शायद ऐसी खुशी का अनुभव उसने पहले कभी नहीं किया था। जब उसने ट्रेन की खिड़की से झाँकर देखा तो प्रकृति के लुभावने रूप ने उसे मोहित कर दिया था। चारों ओर हरियाली फैली हुई थी। खेतों में फसलें लहलहाने लगी थी। पेड़, पौधों, झरने, नदियाँ उत्सव मनाते हुये नज़र आ रहे थे। मानो वे सभी मिताली की खुशियों में शामिल होकर अनंत आनंद के गगन में ऊँची उड़ान भर रही हों। ऐसे में एक तितली उड़ती हुई आई और मिताली के हाथ पर बैठ गयी। थोड़ी देर बाद वह उसके गालों का स्पर्श कर दूसरी खिड़की से बाहर चली गयी। मिताली को महसूस हुआ कि मनेश ही तितली बनकर आया था। उसने हाथों को छुआ और गालों का स्पर्श कर मिलन के उतावलेपन का सन्देश दे गया। ट्रेन को जालना स्टेशन से निकलकर लगभग आधा घण्टा हो गया था।

अब सिर्फ आधा घण्टा शेष था। घड़ी के काँटे भी ट्रेन की रफ्तार के साथ दौड रहे थे। लगता था कि वे भी दोनों के मिलन में कोई बाधा उपस्थित नहीं करना चाहते थे। उधर मनेश मिताली के आने की बेसब्री से प्रतीक्षा कर रहा था। जैसे-जैसे ट्रेन औरंगाबाद स्टेशन पर पहुँच रही थी। दोनों के दिल की धड़कनें तेज हो रही थीं। मिलन की बेचैनी में उन्हें हर पल सालों के समान लग रहा था। मनेश तो कब का स्टेशन पहुँच गया था। उसकी नज़र लगातार परभणी से आने वाली मराठवाड़ा एक्सप्रेस की ओर लगी हुई थी। उसका स्टेशन प्लेटफार्म पर बेचैन टहलना और पुनः पटरियों पर नजर दौड़ाना उसकी गहन व्याकुलता की ही अभिव्यक्ति कर रहा था। प्लेटफार्म पर निवेदिका उद्घोषण कर रही थी। धर्माबाद से मनमाड़ जाने वाली मराठवाडा एक्सप्रेस थोड़ी ही देर में एक नंबर प्लॅटफॉर्म पर आयेगी। खुशी और उतावलेपन का द्वंद्व उसके मुख और शारीरिक हलचल से साफ-साफ अभिव्यक्त हो रहा था।

मिताली के मिलन की बेसब्री ने उसे ट्रेन के द्वार पर ला खड़ा किया था। वह भी दरवाजे से औरंगाबाद स्टेशन के आने की प्रतीक्षा कर रही थी। ट्रेन की रफ्तार के कारण हवायें तेज दौड़ रही थी। ठंडी हवाओं से मिताली के बाल खुल गये थे। खुलकर वे हवाओं के संग उड़ते हुये खुशियाँ मना रहे थे। हवाओं का स्पर्श उसके पूरे तन को हो रहा था। दुपट्टा भी खुले बालों का साथ दे रहा था। उसका रोम-रोम हर्ष-उल्हास का पर्व मना रहा था। मिताली भी एक हाथ से हवाओं के साथ अटकेलियाँ कर रही थी। जैसे ही उसने औरंगाबाद का स्टेशन देखा तब उसने एक लंबी साँस ली। साँस लेते ही उसका शरीर रोमांचित हो उठा था। इतने दिनों बाद मनेश से मुलाकात होने जा रही थी वह मिलन की हर खुशी को अपने साँसों में रोम-रोम में बसा लेना चाहती थी। ट्रेन प्लेटफार्म पर आ चुकी थी। दोनों की नजरें भीड़ को चीरते हुये एक-दूसरे की तलाश कर रही थी। भीड़ का हर चेहरा उन्हें मनेश या मिताली दिखायी दे रहा था। दोनों की बिछड़ी हुई नजरें अचानक मिल गयी थी। मिताली ने मनेश को और मनेश ने मिताली को देख लिया था। एक ही नजर ने सारे अतीत के चित्रों को जीवित कर दिया था। दोनों के ओठों पर मुस्कुराहट की एक लंबी लकीर खींच गयी थी। उनका पूरा शरीर मुस्कुरा रहा था। क्योंकि वे दो तन और एक आत्मा थे। जब दोनों मिल जायेंगे तो सारी कायनात में आनंदोत्सव मनाया जायेगा। मिताली ने जैसे ही ट्रेन से नीचे कदम रखा वैसे ही मनेश उसकी ओर दौड़ता हुआ आया और मिताली भी मनेश को गले लगाने के लिये आगे बढ़ गयी थी। दोनों ने एक दूसरे को गले लगा लिया था। दुनिया की फिक्र से दूर वे अपने ही आप में खो गये थे। सारे लोग उन्हें देख रहे थे पर मानो उन्हें इन दुनिया वालों से कोई लेना देना ही न हो। वे अपने ही विश्व के आनंद सागर में डुबकियाँ लगा रहे थे। प्रेमरस

ने उन्हें पूरी तरह से भिगो दिया था। लगता था कि दोनों को ईश्वर की प्राप्ति हो गयी है। और वे इस संसार से बाहर आना ही नहीं चाहते थे। इतने दिनों के विरह की कमियाँ वे पूरी कर रहे थे। हर पल को हर साँसों को वह पूरी तल्लीनता से जी रहे थे। स्थितियों ने उन्हें एक-दूसरे से अलग कर दिया था और प्रकृति आज उन्हें मिला रही थी।

× × ×

मनेश मिताली से दूर रहकर कभी खुश नहीं था। उस दिन उसकी इच्छा पूरी हो यगी थी। दो प्यार करने वाले को दोनों के परिवार ने एक सूत्र में पिरो दिया था। अब दोनों को विवाह से कोई नहीं रोक सकता था। जल्द ही उनका विवाह होने वाला था। उस दिन मनेश मिताली को अपने बाईक पर बिठाकर अपने घर जाने वाला था। पर जाने से पहले वे गार्डन से टॉकिज होते हुये हॉटेल गये। यहाँ उन्होंने भोजन किया था। मनेश जब मिताली को वापस स्टेशन पर छोड़ने के लिये बाईक पर जा रहा था। उसे अपने बाईक की स्पीड को बढ़ाना पड़ा था। क्योंकि ट्रेन छूटने के लिये सिर्फ पाँच मिनट का समय था। बाईक की रफ्तार मनेश लगातार बढ़ा रहा था। पर अचानक सामने से एक कार आने से उन्हें सड़क के किनारे से आगे निकलना पड़ा था। उनकी जान बालबाल बच गयी थी। उन्होंने ईश्वर का शुक्रिया आदा किया था। वे खुशनसीब थे कि वे बच गये थे। पर किस्मत हमेशा साथ देगी इसकी कोई गारंटी नहीं होती। जैसे ही वे बचकर निकले ही थे कि सामने से आने वाले एक ट्रक ने उनके बाईक को उड़ा दिया था। उनका एक्सीडेंट हो गया था। वे बाईक के साथ लगभग बीस-पच्चीस फीट ऊपर उड़ गये थे। जिससे उन दोनों के बचने की कम संभावना थी। लोगों ने संवेदना प्रकट करते हुये उन्हें अस्पताल पहुँचाया था। मिताली तो बच गई थी पर मनेश के सिर पर गंभीर चोट लगने से वह कोमा में चला गया था। जब मिताली को होश आया तब उसे पता चला कि मनेश कोमा में चला गया है। वह कोमा से कब बाहर आयेगा कहा नहीं जा सकता था। डॉक्टरों ने बताया था कि, ''यदि ईश्वर की कृपा रही तो वह एक दिन, दो दिन या दो महीने में कोमा से बाहर आ सकते हैं। या एक साल, दो साल, पाँच साल भी लग सकते हैं। ऐसा भी हो सकता है कि वह कोमा से बाहर ही ना आये।'' मिताली को इस बात का बहुत बड़ा आघात लगा था। वह सोंच भी नहीं सकती थी कि उसके साथ ऐसा होने वाला है। जब सबकुछ ठीक-ठाक चल रहा था। जब सबकी मंजूरी मिल गयी थी। विवाह होने वाला था। तब ऐसा क्यों हो गया। वह अपने आप को अपने नसीब को कोसे जा रही थी। ''मैं ही कसूरवार हूँ। मेरे ही कारण मनेश की यह हालत हो गयी है। पहले जाति ने हमें दूर कर दिया था। अब ईश्वर ने.... मैंने ऐसा क्या किया था। जिसकी सजा मुझे इस रूप में भुगतनी पड़ रही है। अब मैं उसके बिना जीकर क्या करूँगी। उसके

बिना मेरा जीवन व्यर्थ है।'' मिताली को उसके माता-पिता ने समझाया था कि, ''बेटा ऐसे हार मान कर कैसे चलेगा। डॉक्टर ने कहा है ना वह एक दिन, दो दिन, दो माह में कभी भी कोमा से बाहर आ सकता है। हम मनेश के आने की प्रतीक्षा करते हैं। हम सब तेरे साथ हैं बेटा, हार मत मानना।'' मिताली परभणी आ चुकी थी। वह रोज प्रतीक्षा करती थी कि आज मनेश कोमा से बाहर आयेगा। दिन बीतते जा रहे थे। समय की सुई तेज गति से चलने लगी थी। महीना-दो महीने, तीन महीने, साल बीत गया था। पर मनेश कोमा से बाहर आने का नाम नहीं ले रहा था। मिताली मनेश के विरह में सूखते जा रही थी। उसके चेहरे की रौनक कहीं गायब हो गयी थी। वह असमय ही वृद्धो-सी प्रतीत होने लगी थी। जब एक साल बीत गया तब मिताली के मम्मी-पप्पा ने आशायें छोड़ दी थीं। उन्हें अपने बेटी की चिन्ता लग रही थी। उसके सामने अपनी पूरी जिंदगी पड़ी हुई थी। उन्होंने तो उसकी इच्छा पूरी की थी पर जब ईश्वर को ही यह बात मंजूर नहीं थी। तब उन्होंने भी घुटने टेक दिये थे। अब भी रूपेश मिताली की प्रतीक्षा कर रहा था। उसने भी दूसरी लड़की के बारे में नहीं सोचा था। उसे मिताली इस अवस्था में भी स्वीकार थी। क्योंकि उसने भी मिताली से सच्चा प्यार किया था। वह भी चाहता था कि मिताली का विवाह मनेश से हो पर किस्मत को कुछ और ही मंजूर था। मिताली के मम्मी-पप्पा ने मिताली को समझाया था, ''बेटा हमने तेरी इच्छा पूरी की थी। अब जब एक साल बीत गया उसके कोमा से बाहर आने की कोई संभावना नहीं है। हम तुझे इस हालत में नहीं देख सकते। अभी भी तेरे सामने पूरी जिंदगी पड़ी है बेटा। हमने मनेश की बहुत प्रतीक्षा की, अब हमारी खातिर बेटा तुम्हे रूपेश से विवाह करना होगा।''

मम्मी-पप्पा को इस तरह व्याकुल और रोते हुए देख मिताली ने 'हाँ' कह दिया था।

× × ×

पाँच साल हो गये थे मनेश को कोमा में गये । मिताली ने अब भी मनेश को नहीं भुलाया था। वह भले ही रूपेश से विवाह कर उसके घर रह रही थी। पर दोनों ने कभी शारीरिक संबंध नहीं बनाये थे। शादी की पहली रात में ही मिताली ने रूपेश से कहा था, ''रूपेश जी मैंने आप से विवाह किया, अपने माता-पिता की इच्छा थी इसीलिए । मैं आपको तन तो दे सकती हूँ पर मन तो मनेश के पास है। मैं मन से सदा मनेश की थी और मनेश की ही रहूँगी। आप इस शरीर को अपना बना सकते हो पर मन को नहीं।''

रूपेश ने मिताली की बात सुनी थी। वह चाहता था कि मिताली उसे तन और मन से स्वीकार करे। जब तक वह तन और मन से स्वीकार नहीं करेगी तबतक वह उसे स्पर्श नहीं करेगा। रूपेश पाँच साल तक प्रतीक्षा करता रहा था। उसने अपनी ब्याहता पत्नी को जो किसी और को चाहती है, कभी किसी बात के लिये उसे दुःखी

नहीं किया था। रूपेश और मिताली ने अपने-अपने स्थान पर बहुत बड़ा त्याग किया था । वे दोनों सच्चे एकनिष्ठ प्रेमी थे। उन्होंने अपनी खुशियों को त्याग कर सच्चे प्रेम को जीवित रखा था। रूपेश चाहता तो उसे जबरन अपना बना सकता था। पर वह इंतजार करता रहा। मनेश से मिताली को मिलाने के लिये उसने अपने जीवन का सुरक्षा कवच मिताली को प्रदान किया था। उसे खुली छूट थी, जैसे चाहे वैसे जीने की। उसके समर्पण, त्याग से मिताली धीरे-धीरे प्रभावित होने लगी थी। कहीं न कहीं शनै-शनै उसके मन मस्तिष्क से मनेश की यादें कुछ धुंदली होने लगी थीं। वह यादों में जीवित तो था पर रूपेश उसकी नजरों में आदर्श पति के रूप में उभर रहा था। ऐसे लग रहा था कि मिताली अब रूपेश को मन से चाहने लगी थी। उनकी दूरियाँ नजदीकियों में परिवर्तित हो रही थी। पर एक मर्यादा के भीतर। उन्होंने अबतक मर्यादा नहीं तोड़ी थी।

उस दिन रूपेश अपने ससुराल से हो आया था। तब वह प्रसन्न था। उसने हर्ष के साथ मिताली को सुनाया था कि, ''मिताली, आज मैं तुम्हे सबसे बड़ी खुशखबरी देने वाला हूँ। आओ यहाँ बैठो। मनेश कोमा से बाहर आ गया है। जब मैं तुम्हारे घर हो आया था। तब तुम्हारे पिता ने यह खबर दी थी। मिताली तुम्हारी प्रतीक्षा खत्म हुई। तुम्हारी इच्छा ईश्वर ने मान ली। तुम्हारी एकनिष्ठ तपस्या ने मनेश को मौत के आगोश से बाहर खींच कर निकाला है। चलो तैयार हो जाओ। कल सुबह ही हमे औरंगाबाद निकलना है।''

इस खबर से मिताली का पुनर्जन्म हुआ था। उस दिन सारी खुशियाँ मनेश के खबर के सामने बौनी लग रही थी। उसने खाँसते हुये रूपेश से कहा, ''रूपेश जी मैं आपका शुक्रिया कैसे आदा करूँ कुछ समझ नहीं आता। मैं आपकी ब्याहता पत्नी होने के बावजूद भी आपने मनेश के लिये मुझसे स्पर्श भी नहीं किया। आपके त्याग के आगे मेरा त्याग बहुत बौना हो गया है। आपके जीवन में जो भी स्त्री आयेगी वह भाग्यवान होगी। आप जैसा पति पाकर हर स्त्री अपना जीवन धन्य मानेगी मुझे क्षमा करना मैं आपकी नहीं बन सकी।'' उस दिन उसकी खाँसी लगातार बढ़ रही थी। जब थमने का नाम नहीं ले रही थी तब रूपेश ने उसे खाँसी की दवाई दी थी। जिस कारण खासी कुछ कम हो गयी थी। मिताली को वह दिन याद आ रहा था, जब उसके पिता ने मनेश को स्वीकार करते हुये मिलने जाने की छूट दी थी। उस रात उसकी आँखें एक पल के लिये भी नहीं झपकी थी। अब भी वह सारी रात जाग रही थी। मनेश से मिलने की खुशी उसके चेहरे पर साफ-साफ झलक रही थी। अब की बार मनेश स्वयं स्टेशन पर नहीं आ सकता था। उसे मिलने के लिये अस्पताल जाना था। धीरे-धीरे मनेश की प्रकृति में भी सुधार हो रहा था।

× × ×

तुम मेरी मिताली नहीं हो सकती। मेरी मिताली तो कोई और ही है। मुझे जाना है स्टेशन पर उसे लाने के लिये। न जाने वह कब से मेरा इंतजार कर रही होगी। बहुत इंतजार करना पड़ा है हमको। आज हमारा मिलन होने वाला है। और तुम कहती हो कि मैं ही मिताली हूँ। मेरी मिताली तो बहुत सुंदर है। हँसमुख, मीठी आवाज हर कोई मोहित होता है उससे। जाने दो मुझे। मुझे जाना है मिताली के पास। मेरा समय यूँ बरबाद ना करो।''

इतने सालों बाद मिताली मनेश को देख रही थी। और मनेश था कि उसे पहचानने से ही इनकार कर रहा था। इस बात का सदमा मिताली को लगना ही था। वह पश्चाताप कर रही थी कि, ''इतने साल मैंने जिसकी प्रतीक्षा में बिता दिये। कोई ऐसा दिन न था, जिस दिन मैंने मनेश को याद ना किया हो। मैंने किसी को अपना स्पर्श नहीं करने दिया। मनेश को ही अपना पति मान व्यर्थ ही इतने साल बरबाद कर दिये। इससे तो अच्छा रूपेश है, जो मनेश के लिये एकनिष्ठ, पवित्र रहा। उसने मेरा स्पर्श तक नहीं किया। हमेशा उसने मेरी खुशियों का खयाल रखा। और मनेश।''

मनेश मिताली को दुत्कार-फटकार कर वहाँ से चला गया था । मिताली सदमें से बेहोश हो गयी थी। मिताली को कैन्सर था। रूपेश ने मिताली को कभी नहीं बताया था कि उसे कैंसर है। और समय पर उसकी सेवा-सुश्रुषा करता रहा था। कैन्सर होने के बावजूद भी, मनेश से वह प्यार करती है, यह पता होने पर भी रूपेश उसे सच्चे दिल से चाहता रहा था। उसने अपने जीवन को मिताली के सुखों के लिये अर्पित किया था।

मिताली पूरी तरह होश खोने के कारण वह ऐसे बेहोश हुई कि फिर वह कभी लौटकर नहीं आयी। वह अब कोमा में जा चुकी थी। उसके बचने के कोई चान्सेस नहीं थे। कैन्सर और ऊपर से कोमा।

रूपेश जब घर लौटा था, तब उसके पास सिवाय मिताली के यादों के कुछ भी न था। कुछ दिनों बाद पता चला कि मनेश फिर से कोमा में चला गया। उसके पास से एक डायरी मिली थी। उस पर लिखा था। ''मुझे आज पता चला कि मैं लगभग पाँच सालों तक कोमा में था। इस दौरान मिताली का विवाह उसकी इच्छा के बगैर रूपेश से हो गया था। रूपेश ने मेरे लिये मिताली को अबतक सम्हाले रखा था। रूपेश ही सच्चा प्रेमी है । वही उसे खुश रख सकता है । मुझे माफ करना मिताली।''

♦

3
षड्यंत्र

''उसने मुझे, मुझे इनकार किया। विजय साँझा को इनकार किया। उसकी हिम्मत कैसे हुई। सबके सामने उसने मुझे बेइज्जत किया। मुझसे विवाह करने से इनकार किया। इस विजय से शहर की हर खूबसूरत लड़की विवाह के लिए तैयार हो जाएगी। इसकी सजा उसे मिलेगी। मैं उसे ऐसा सबक सिखाऊँगा कि वह क्या उसकी आने वाली सात पुश्तें तक याद रखेंगी। वह अपनी जिन्दगी को हर समय कोसेगी। वह अपने लड़की होने पर पछतायेगी।'' विजय संतोषी द्वारा विवाह के लिए इनकार किये जाने पर बुरी तरह बौखला गया था। वह उस इनकार को बर्दाश्त नहीं कर पाया। उसने संतोषी से बदला लेने की ठान ली थी। उसके मस्तिष्क में भयानक शैतानी विचार तांडव करने लगे थे। उसने सोंच लिया था कि संतोषी को ऐसा सबक सिखाएगा की वह जिन्दगी भर याद रखेगी। उसने अपने दौलत के बल पर संतोषी को बदनाम करना शुरू कर दिया था। संतोषी जहाँ भी जाती उसके भेजे हुए गुंडे उसके पीछे जाते और उसे बदनाम करते। उसके घर आने वाला हर रिश्तेदार और देखने आने वाले लड़के के परिवार में उसकी बदनामी करते। धीरे-धीरे विजय ने सारे शहर, रिश्तेदारों में उसकी बदनामी को अंजाम दे दिया था। बदनामी के चलते अब संतोषी का घर से बाहर निकलना मुश्किल हो गया था। विजय साँझा ने शहर, रिश्तेदारों में बात फैला दी थी कि संतोषी को एड्स हो गया है। संतोषी एक खूबसूरत, सुशील, शालीन लड़की थी। उसके पिता के गुजर जाने के बाद उसकी माँ ने ही उसे पाल-पोसकर बड़ा किया था। संतोषी की माँ किसी ऑफिस में पिउन का काम किया करती थी। उसकी इतनी आय न थी कि वह अच्छा जीवन यापन करे। पर संतोषी को कभी भी किसी चीज की कमी महसूस नहीं होने दी थी। उसने बड़े मेहनत से एक छोटा मकान बनवाया था। और कुछ रुपये संतोषी के ब्याह के लिए रखे थे। संतोषी की माँ ने उसे पढ़ा लिखाकर अपने पैरों पर खड़ा होने लायक बनाया था। जैसे-जैसे संतोषी जवान हो रही थी, वैसे-वैसे उसकी सुन्दरता चाँद को भी शर्मिन्दा करने वाली साबित हो रही थी। खूबसूरती के चर्चे सारे शहर में हो रहे थे। ऐसे में मनचले लड़कों वासना के पुजारियों की नज़र उस पर पड़ना स्वभाविक ही था। एक तो वह खूबसूरत और दूसरा यह कि वह गरीब की लड़की थी। ऐसे में कई प्रश्न चिह्न उपस्थित होने वाले थे। रिश्तेदारों में उसकी चर्चा के चलते कई अच्छे घर

के रिश्ते उसके लिए आने लगे थे। पर संतोषी अभी विवाह नहीं करना चाहती थी। वह कोई नौकरी कर अपनी माँ का सहारा बनना चाहती थी।

वह सोचती कि, "मेरा विवाह हो जायेगा तो माँ अकेली पड़ जाएगी। उसकी और कान ध्यान देगा। उसका ख्याल कान रखेगा। मेरे जाने के बाद वह अकेली रह जाएगी।"

इसीलिए वह विवाह को जितना हो सके टालना चाहती थी। पर उसके जीवन में शायद कुछ और ही लिखा था। होनी को कुछ और ही मंजूर था। उसके जीवन में विजय साँझा का बवंडर बनके आना लिखा था। जो अपने साथ सब कुछ नेस्तनाबूद करने वाला था। उस दिन विजय साँझा अपने धनिक माँ-बाप के साथ एक बड़ी सी कार लेकर संतोषी के घर आया था। उससे विवाह करने के लिए। उसका हाथ मांगने के लिए। संतोषी को पता नहीं था कि धनिक साँझा का लड़का विजय उसे देखने के लिए आने वाला है। माँ ने उसे सिर्फ इतना बताया था कि उनसे मिलने के लिए कोई घर आने वाला है। बस तैयार होकर बैठना है। जब उसे पता चला कि विजय साँझा उसे देखने के लिए आया है। तब उसने अपनी माँ से उसके सामने आने से इनकार कर दिया था। बहुत देर तक समझाने के बाद। कसम खिलाने के बाद वह बाहर आई थी। उसे विजय साँझा पता था। वह धनिक बाप का बिगड़ा हुआ बेटा था। उसने ऐसा कोई काम नहीं छोड़ा था जिससे उसे शरीफ कहा जा सकता हो। वह अपने पिता के पैसों पर ऐशो आराम करता था। शराब पीना, जुआ खेलना, देर रात तक पार्टियाँ करना। हर रात कई लड़कियों के साथ सम्बन्ध रखना। वह जैसा बाहर से कुरूप था वैसे ही भीतर से उसका मन कलुषित, वासनिक था। इसीलिए संतोषी ने उसके माता-पिता के सम्मुख ही बड़ी हिम्मत करते हुए विनम्रता के साथ इनकार कर दिया था। विजय साँझा बड़ी हसरते लेकर आया था कि आज रिश्ता पक्का कर लेते हैं और तुरंत ब्याह। पर उस दिन मानो संतोषी के इनकार ने उसके गाल पर जोरदार तमाचा जड़ दिया था। विजय साँझा को बचपन से लेकर आजतक जो माँगा उससे पहले ही उसे मिल गया था। उसकी हर इच्छा पूरी की गई थी। उसने आपनी पूरी जिन्दगी में इनकार शब्द कभी नहीं सुना था। संतोषी द्वारा किया जाने वाला इनकार उसने पहली बार सुना था। इस कारण वह बाहर और भीतर से आग बबूला हो रहा था। उसके भीतर क्रोध की भीषण अग्नि प्रज्वलित हो रही थी। वह संतोषी के घर से जाते-जाते कह गया था।

संतोषी तूने मुझे इनकार करके अच्छा नहीं किया। तू मेरी नहीं हो सकती तो मैं तुझे किसी की भी नहीं होने दूँगा। देखना तू एक दिन तलवे चाटते हुए मेरे चौकठ पर आएगी।

उस दिन संतोषी ने भय और साहस के मिश्रण से उसे बाहर का मार्ग दिखाया था। संतोषी और उसकी माँ बुरी तरह से भयग्रस्त थीं कि अब क्या होगा? पर दोनों

भी एक-दूसरे को साहस बँधा रहे थे।

× × ×

संतोषी को एड्स हो गया है। वह कुछ ही दिनों की मेहमान है। उसने कहाँ-कहाँ किस-किस के साथ मुँह काला किया है। दिखने में तो कितनी सीधी लगती है।

ऐसे अफवाहों के वायरस ने और तानों के तीरों ने उसे एवं उसकी माँ के हृदय को छन्नी-छन्नी कर दिया था। उनका जीवन जीते जी नरकमय हो गया था। उनके यहाँ कोई रिश्ते की बात तो छोड़ो, उनके परिवार को लगभग सारे शहर ने बहिष्कार कर दिया था। उनके यहाँ पानी पीना तक पाप समझा जा रहा था। जो लोग संतोषी और उसकी माँ की भूरि-भूरि प्रशंसा करते न थकते थे। आज उन्हीं लोगों की नजरों में मानो वे घृणित बन गये थे। संतोषी और उसकी माँ यह सब कुछ सहने के लिए विवश थे। वे कुछ भी नहीं कर पा रहे थे। वे किसी से मदत भी नहीं मांग सकते थे। क्योंकि विजय साँझा ने अपने रुपयों के दम पर सबको अपने बस में कर लिया था। विजय ने संतोषी को जीते जी मानो मार दिया था। वे समाजहीन जीवन जी रहे थे। लग रहा था कि उन्होंने कोई जघन्य अपराध किया हो। दिन बीतते गए। कई बार आत्महत्या के विचार आने के बावजूद भी उन्होंने जीवन जीना नहीं छोड़ा था। बड़े साहस के साथ वे समाज के सम्मुख जीवन जीने का प्रयास कर रहे थे। उन्होंने विपरीत परिस्थितियों के बावजूद भी जीवन से हार नहीं मानी थी। संतोषी के माँ को संतोषी के विवाह की चिंता सता रही थी। पर अक्सर कहा जाता है ना जोड़ियाँ पहले से ही बनकर आती हैं। संतोषी के जीवन में भी एक सुजन, सजग, साहसी युवक का प्रवेश हुआ था। उसने सबकुछ जानते हुए उससे विवाह का निर्णय लिया था। दोनों ने छिपके माँ के सम्मुख मंदिर में विवाह के धागे को मजबूत किया था। संतोषी का विवाह आखिरकार हो ही गया था।

जब विजय साँझा को इस बात की खबर लगी कि संतोषी ने किसी के साथ विवाह कर लिया है। उसके पैरों तले की जमीन खिसक गयी थी। वह सर से पैर तक आग बबूला हो गया था। उसकी सारी मेहनत पानी में जा चुकी थी। वह पराजित हो चुका था। वह अपनी पराजय को बर्दाश्त नहीं कर पा रहा था। उसके मन-मस्तिष्क में भयानक विचार रक्तरंजित युद्ध कर रहे थे। उसके मन में संतोषी की हत्या के विचार आने लगे थे। वह सोच रहा था कि उसकी गर्दन ही काट देगा। उसके शरीर की बोटी-बोटी कर चिल-कव्वों को खिला देगा। उसके खूबसूरत चेहरे पर तेजाब फेंक देगा। उसे कुरूप बना देगा। न जाने वह क्या-क्या सोंच रहा था। उस रात को वह सोया नहीं। वह सारी रात जागता रहा था। शराब ने उसके मस्तिष्क को अपने काबू में करना शुरू कर दिया था। आखिर उसने ठान ही लिया कि वह अभी पराजित नहीं हुआ है। वह उसे खुश नहीं रहने देगा। उसकी जिन्दगी से फिर से खुशियों को छीन लेगा। वह संतोषी को हर रात जब उसका पति साथ में होता तब उसके मोबाइल

पर अश्लील फोन करवाता था। उसके पति ने यह सोंच कर ऐसे काल को नज़र अंदाज किया था कि रांग काल होगी। पर जब यह सिलसिला हर रोज ही होने लगा था। धीरे-धीरे उसके पति के मन में शक उत्पन्न होने लगा था। शक के इस बीज़ को विजय साँझा रोज खाद पानी डाल रहा था। वह बाहर के परिवेश में वैसा वातावरण बना रहा था। संतोषी से उसका पति अब तक बहुत प्रेम किया करता था पर अब प्रेम धीरे-धीरे झगड़े का रूप धारण कर रहा था। संतोषी इधर दुखी थी कि उसके साथ यह क्या हो रहा है। उसने अपने पति को विजय साँझा की हकीकत पहले ही बता दी थी। पर विजय साँझा अपने बनाये हुए षड्यंत्र में कामयाब हो गया था। उसने अच्छे खासे संसार में जहर घोल दिया था। वह रोज आग में घी डालने का कार्य कर रहा था। हमारे समाज में कुछ लोग ऐसे होते हैं, जिन्हें दूसरों को दु:ख देकर, दूसरों की जिन्दगी बर्बाद कर एक अलग प्रकार की खुशी मिलती है। वे लोगों की भावनाओं के साथ खिलवाड़ करते हैं। उन्हें इसमें आनंद की प्राप्ति होती है। विजय साँझा को भी ऐसे ही आनंद की प्राप्ति होती थी।

वह संतोषी के पीछे हाथ धोकर पड़ गया था। जब उसका पति नौकरी के लिए जाता और लौटकर जब आता तब उसके सम्मुख कुछ ऐसे दृश्य प्रस्तुत किये जाते जिससे यह साबित हो जाता कि उसकी पत्नी कई पुरुषों के साथ सम्बन्ध रखती है। धीरे-धीरे संतोषी को उसने वेश्या के रूप में बदनाम कर दिया था। संतोषी का पति आखिर वह भी एक सामान्य इन्सान ही था। कब तक वह बर्दाश्त कर पाता। फिर भी वह यह सोचता कि यह उसका वहम है। या पति-पत्नी के अच्छे संसार में लोग आग लगाते हैं। इतना सब होने के बावजूद भी संतोषी का पति उसके साथ रह रहा था। पर विजय खामोश बैठने वालों में कहाँ था।

जब संतोषी को लड़का हुआ तब वह बेहद प्रसन्न थी। उसकी खुशी की कोई ठिकाना न रहा था। उसके सामने उस दिन सारी खुशियाँ बौनी साबित हो रही थी। विजय को संतोषी की खुशियाँ तीर की भाँति चुभ रही थीं। वह तत्काल इसका प्रति उत्तर देना चाहता था। और उसने वैसा ही किया। उसने फिर से अफवाह फैला दी कि संतोषी के लड़के का बाप कोई और है। इस बार विजय का तीर गंभीर घाव करने में कामयाब हो गया था। उसने संतोषी और उसके पति को अलग कर दिया था। पहले ही एड्स से बदनाम संतोषी अब वैश्या, व्यभिचारी के रूप में बदनाम हो रही थी। ऐसे में उसकी माँ यह सदमा बर्दाश्त नहीं कर पाई और वह पेरेलेस का शिकार हो गई। एक दिन जब संतोषी अपनी माँ के घर बच्चे को गोद में लेकर आँसू बहा रही थी, तब उसके कानों पर कुछ शब्द पड़े कि विजय साँझा को एड्स हो गया है और कुछ ही दिनों का मेहमान है। उसकी आँखों से बहने वाले आंसुओं की धारा और भी तेज हो गई थी।

♦

4
बेरोजगार

"तुम्हें शर्म नहीं आती बाप होकर भी अपनी लड़की के जन्म दिन पर एक सायकल गिफ्ट नहीं दे सकते। लानत हैं तुम्ह पर, मुझे तुम्हें अपना पति कहते हुए भी....।"

नितीन को शिला ने अपने परिवार के सामने बेइज्जत किया था। उस दिन नितीन विवश था। वह हृदय पर पत्थर रखे, खामोश अपमान के घूंट पिये जा रहा था। स्वाति दुखी थी कि उसके कारण पिता नितीन की बेइज्जती हो रही थी।

स्वाति ने माँ शिला से कहा, "माँ मुझे सायकल नहीं चाहिये। मैंने तो ऐसी ही कहा था।"

नितीन समझ गया था कि स्वाति ने अपने पिता के दर्द को इतनी कम उम्र में समझ लिया था। नितीन सोंच रहा था कि स्वाति बड़ी होकर समझदार लड़की बनेगी।

नितीन सोच रहा था, "अब की पेमेंट मिलेगी तो स्वाति को सायकल भेट दूँगा। फिर नहीं कहेगी शिला, उसका पति निकम्मा है।"

नितीन शहर के एक मिल में काम किया करता था। वह उच्च विद्या विभूषित था। उसकी पत्नी क्लास वन ऑफिसर थी। नितीन रात भर जागकर मिल में लिखा-पढ़ी का काम करता था। दिन में कॉलेज पर काम करने से पहले ही थका नितीन रात में काम करते समय और भी थक जाया करता था। इसका असर यह होता कि काम करते समय उसे झपकी लग जाती। और विडम्बना यह कि जिस समय झपकी लगती उसी समय मिल का मालिक गस्त पर होता था। जब वह नितीन को इस अवस्था में देखता तो उसके मुँह पर जोर से पानी फेंकता। नितीन घबराया-सा उठ खड़ा होता। मालिक जोर-जोर से चिल्ला कर सारी मिल सर पर उठा लेता था। मिल में काम कर रहे अन्य मजदूर इस घटना को होते देख अपने-अपने कामों में सतर्कता बरतते थे। कहीं उनकी बारी न आ पड़े। मिल मालिक बड़ी गन्दी-गन्दी गाली देता था।

"अबे हरामखोर, यहाँ सोने के लिए आया है। काम नहीं कर सकता तो यहाँ क्यों आया बे। पेमेंट लेते समय बड़े जोश और होश में आते हो मेरे पास। इतना-सा

काम नहीं होता, आजकल के पोटों को....।''

नितीन को यह सब कुछ सुनकर भीतर से गुस्सा तो बहुत आता था। पर अब उसे यह सब सहने की आदत पड़ गई थी। वह विवश और मजबूर होकर मील मालिक के पाँव पकड़ लेता था। माफी की गुहार लगाता, रोता तब कहीं जाकर मालिक का मन पसीजता और माफ करते हुए कहता।

''अब की बार माफ कर रहा हूँ। अगली बार काम पर सोते हुए दिखाई दिया तो, कमर पर लात मार कर काम से निकाल दूँगा। फिर देखता हूँ तुझे शहर में कौन काम पर रखता है।''

नितीन आँसुओं से भरी आँखों को लेकर हाँ में गर्दन हिला देता था। वह सोंचता कि, ''रात भर काम करता हूँ तो कहीं जाकर पूरे पैसे मिलते हैं। काम में थोड़ी चूक हुई नहीं की तनखाह काट लेता है या जान बूझकर अधिक काम करवा लेता है। साला बीवी का गुस्सा हम पर निकलता है।''

नितीन ने अबतक थोड़े-थोड़े कर रुपये तो जमा किये थे पर वे इतने नहीं थे कि उससे सायकल खरीद सके। दिन में वह एक कॉलेज पर काम किया करता था। वहाँ वह अंशदायी अध्यापक के रूप में कार्य करता था। यहाँ भी उसके वरिष्ठ लोग उसे अधिक का काम लगाया करते थे। उनके प्रियेड लेना। उनके कार्यालयीन काम करना। वैसे एक अध्यापक का काम छात्रों को पढ़ाना होता पर उसे यह सब काम करते हुए महसूस होता कि वह अध्यापक है या क्लर्क है। वैसे भी आज अध्यापक की अवस्था को देखकर ऐसे लगता है कि वह अध्यापक है या क्लर्क है। वह क्लर्क के कामों में इतना व्यस्त रहता है कि संदेह होने लगता है, वह पढ़ेगा कब और पढ़ायेगा कब। खैर, नितीन जब अध्यापन का काम किया करता था तब उसे कॉलेज आने-जाने, नाश्ता करने, कभी कभार भूख लगने पर बाहर खाना खा लेने पर रुपयों की कमी महसूस होती थी। कॉलेज पर जो पेमेंट होती थी, वह पर्याप्त नहीं होती थी। जितनी अंशदाई अध्यापक की एक साल की पेमेंट मिलती, उतनी पूर्ण कालिक अध्यापक की एक माह की पेमेंट होती थी। वह भी छः महीनों में या साल के बाद तो कभी-कभी दो साल के बाद वह भी काट कुटा कर पेमेंट मिलती थी। सो नितीन का गुजारा कैसे हो सकता था।

जब भी नितीन बेबस होता तो उसकी आँखें सजल हो जाया करती थीं। कोई इस अवस्था में न देख ले इसीलिए अकेले में वह आँसुओं से अपनी पीड़ा को तसल्ली देता था। वह कर्मठ था। उसने कभी भी परिश्रम से हार नहीं मानी थी। उसमें अजब सी सहन शक्ति थी। उसके स्थान पर कोई और होता तो शायद उसके सब्र का बाँध टूट जाता और वह कुछ अनिष्ठ कर जाता। पर नितीन ने अपना लक्ष्य चुना था। उसका लक्ष्य था पूर्ण कालिक प्राध्यापक बनना। वह लक्ष्य पर अडिग था।

ईमानदार था। उसमें परिश्रम, सहन शक्ति, ईमानदारी के साथ संगठन कौशल्य भी था।

जब नितीन कालेज की पढ़ाई कर रहा था। तब वह यारों का यार था। पढ़ाई, खेल, अभिनय सभी में अव्वल था। उसमें समाज, राष्ट्र के लिए कुछ कर दिखाने की उमंग थी। वह हमेशा से ही समाज, राष्ट्र सेवा के लिए मौका ढूँढा करता था। उसने अपने दोस्तों में समाज सेवा और राष्ट्र सेवा की भावना को प्रस्फुटित किया था। उन्होंने एक जल संकट में घिरे हुए गाँव में कुआँ खुदाई का कार्य हाथ में लिया था। वह गाँव भीषण जल संकट से गुजर रहा था। वहाँ जो तालाब था, वह सूख गया था। वहां सिवाय सूखे कीचड़ की दरारों के अलावा कुछ भी न था। एक कुआँ था, पर उस कुअें पर वहाँ के एक जमींदार का अधिकार था। सो वह पानी भी देता तो प्रति घर एक घड़ा ही....। दूसरी ओर पानी के लिए लगभग चार-पाँच किलो मीटर पैदल जाना पड़ता था। वहाँ भी आसपास के चार गाँव के लोग पानी के लिए आया करते थे। भीड़ एक दूसरे पर उमड़ पड़ती थी। पानी निकाल-निकाल के पानी एकदम कुएँ के जमीन को लग रहा था। उसमें एक गढ्ढा था। उसी में ही गन्दा पानी बचा हुआ था। वही गन्दा पानी लोगों का जीवन बन गया था। ऐसे में नितीन और उनके दोस्तों ने मिलकर तय किया कि उस गाँव में एक कुआँ गाँव वालों की मदत से बनवाया जाये। यही राष्ट्र सेवा थी, यही समाज सेवा थी। हम राष्ट्र के लिए कुछ करें यही समाज सेवा और राष्ट्र भक्ति होती है।

नितीन और उनके दोस्तों ने एक महीना वहीं रहकर गाँव वालों की मदत से कुआँ बनवाया था। कुआँ बनवाते समय जो भी रूखी-सूखी रोटी, चटनी मिल जाया करती वह उन्होंने खाया था। उन्होंने खुले आसमान को छत और धरती को बिस्तर बना लिया था। कुआँ बनवाते समय उन्हें एक अद्भुत आनंद की प्राप्ति हो रही थी। जो दोस्त यह काम कर रहे थे, उन्होंने ऐसा काम पहले कभी नहीं किया था। कुदाल, खुसे से उनके हाथों के छालें निकल रहे थे। कइयों के शरीर पर पत्थरों से खरोंच आ गई थी। दर्द को सहते हुए उन्होंने वह कार्य कर दिखाया था। दर्द सहने में भी उन्हें एक प्रकार की खुशी होती थी। मानों दोस्तों में प्रतियोगिता लगी हुई थी कि कौन दर्द को अधिक सह सकता है। जिस समय कुएँ में पानी लगा और पानी की फुवार को दोस्तों ने अपने ऊपर महसूस किया था। उस समय उनका हर्ष आसमान को भी बौना करने वाला था। उस दिन मानों उन्होंने कोई बहुत बड़ी जंग जीत ली थी। वैसे सूखा ग्रस्त भूमि से जल निकालना किसी जंग को जीतने से कम न था। वे सच्चे राष्ट्रभक्त थे। सच्चे समाज सेवक थे। जिन्होंने आसपास के गाँवों को प्रेरणा दी थी। और बाद में लोगों ने मिलकर जल संकट पर विजय प्राप्त कर ली थी। वे उन गाँव वालों के लिए आदर्श बन गये थे। गाँव वाले जो अबतक नहीं कर पाये थे वह काम नितीन और उनके दोस्तों ने मिलकर किया था।

नितीन का विवाह एक ऊँचे घर की लड़की से हुआ था। नितीन दिखने में भी सुन्दर था। पर उसे अपने जीवन साथी के रूप में असुंदर लड़की से विवाह करना पड़ा था। ऊपर से वह लड़की उसके सम्मुख बौनी थी। और साथ में मुँहफट भी। नितीन ने यह विवाह विवश होकर अनिच्छा से किया था। उसके बस में होता तो शायद ही वह उससे विवाह करता। पर स्थितियाँ ही कुछ ऐसी थीं कि उसे यह निर्णय लेना पड़ा था। उसकी नजरों में वह लड़की उसके स्थान पर बराबर थी। पर उसके जीवन में वह मिसफिट साबित होने वाली थी। नितीन गरीब परिवार से होने के कारण और जवान बहन का विवाह उचित स्थान पर करने के लिए उसने यह समझौता किया था। विवाह होने के उपरांत ही उसकी पत्नी ने अपने तेवर दिखाना शुरू कर दिए थे। वह नितीन की गरीबी का मजाक उड़ाया करती थी। घर के लोगों पर ताने कसना, पग-पग पर दौलत के बल पर अपमान करना उसकी दिनचर्या का एक हिस्सा बन गया था।

♦

5
नंदिनी

"नहीं-नहीं यह पाप है। यह धोखा है। नहीं मैं ऐसा जगण्य अपराध नहीं कर सकती। उसने अपनी पत्नी से न जाने कितनी अपेक्षायें रखी होंगी। सपने देखे होंगे। ....पर उसे कैसे पता चलेगा? कौन बताएगा? मुझे भी एक जीवन साथी मिल जायेगा। मैंने भी देखे थे सपने। मेरे लिए भी आयेगा कोई राजकुमार घोड़े पर सवार होकर। मेरा हाथ थामेगा और मुझे ले जायेगा अपनी दुनिया में। ....पता चल गया तो.... ना रे बाबा.....यह सोंच कर ही दिल काँपता है। जब असलियत सामने आयेगी तब क्या होगा?"

नंदिनी ट्रेन की खिड़की के पास वाली सीट पर बैठे-बैठे सोंच रही थी। वह विचलित थी। द्वन्द्वात्मक मानसिकता से गुजर रही थी। बरसात के ठण्डे मौसम में भी उसके माथे से पसीने की धाराएँ लगातार छूटे जा रही थीं। और वह अपनी ओढ़नी की छोर से माथे से लुढ़कने वाले पसीने की बूँदों को पोछे जा रही थी। नंदिनी की नाजुक गोरी उँगलियों में सोने की रिंग साफ-साफ बयान कर रही थी कि उसकी सगाई हो चुकी थी। हाल ही में उसकी सगाई एक बिजनेसमैन लड़के से हुई थी। नंदिनी मुंबई के किसी जाने माने महाविद्यालय में एम.ए. की पढ़ाई कर रही थी। कुछ दिनों की छुट्टियों में वह अपने घर आयी थी। उसे कतई पता नहीं था कि उसके माता-पिता ने उसके लिए एक अच्छे से वर की तलाश कर ली थी। और सगाई की तारीख भी तय हो गई थी। नंदिनी जब बहुत दिनों बाद दीवाली की छुट्टियों में घर आयी थी। उसी समय उस लड़के ने नंदनी को देखा था। और उसे वह भा गई थी। लग रहा था कि वह उसे पहले से पहचानता था। उसके बगैर अपने जीवन को व्यर्थ पा रहा था। उसने तय कर लिया था कि वह विवाह करेगा तो उसी लड़की से, वरना सारी जिन्दगी कुँवारा बैठा रहेगा। उसने अपने जीवन साथी को नंदिनी के रूप में पा लिया था। उसके जीवन साथी की खोज अब पूर्ण हो गई थी। वैसे उसने बचपन में ही नंदिनी को देखा था। दसवीं कक्षा के बाद वह दूसरे शहर में पढ़ाई के लिए रहने लगी थी। सो उसने कभी कभार ही उसे देखा था। और अबकी बार कई सालों बाद देखा था। नंदिनी अब इक्कीस साल की खूबसूरत जवान लड़की बन चुकी थी। कई युवकों के दिल की धड़कन बनकर धड़क रही थी। स्वाभाविक ही था कि उसकी

खूबसूरती पर युवक अपनी जान छिड़के, सौन्दर्य के साथ शालीनता, कुशाग्र बुद्धि उसके इन गुणों से लगता था कि वह कोई सफल व्यक्तित्व बनेगी। उसके लिए सारे मार्ग बाधाविहीन थे। मानो पुष्प से बिछे हुए पथ उसकी प्रतीक्षा में कब से पलक पावड़े बिछाए राह ताक रहे हों। मंजिल उसके करीब थी। वह एम.ए. की पढ़ाई के साथ एम.पी.एस.इ. की परीक्षाएँ भी दे रही थी। उसने एक सपना देखा था कि वह कलेक्टर बनेगी। उसने अपने सपने को पूरा करने के लिए रात-दिन परिश्रम करना आरम्भ कर दिया था। उसके परिश्रम को देखकर ऐसा लग रहा था कि वह एक ना एक दिन अवश्य कलेक्टर बनेगी। लाल बत्ती की गाड़ी में घूमेगी। अपने समाज और परिवार को लड़की होने का गौरव होगा। वैसे भी उसके परिवार वालों को नंदिनी पर सदा से ही गौरव था।

नंदिनी और संतोष की सगाई बड़ी धूम-धाम से की गई थी। विवाह की तिथि दीवाली के समय की निकाली गई थी। एक तो नंदिनी की छुट्टियाँ रहेंगी और दूसरा संतोष ने नंदिनी को दीवाली के समय देखा था। सो वह भी चाहता था विवाह इसी समय हो। वह सोंचता था कि वह लक्ष्मी है जो दीवाली के दिन मिली। जो मेरे जीवन में दीवाली के दिन ही आयेगी। नंदिनी की सगाई उससे बिना पूछे की जा रही थी। क्योंकि नंदिनी को भी वह लड़का पसंद था। नंदनी ने भी उसे कई बार देखा था। जब भी वह छुट्टियों में घर आती तो उसका बड़ा मन करता कि वह उसे देखे। नंदिनी अक्सर उसे छिप-छिप कर देखा करती थी। संतोष को भी कभी पता न चला था कि नंदिनी भी उसे इस कदर चाहती है। नंदिनी की माँ को इस बात की भनक लग चुकी थी। वैसे उन्हें संतोष पसंद भी था। वह लड़का बिरादरी का ही था। कमाऊ था। उसकी नम्रता, शालीनता से वे पहले ही प्रभावित हो चुके थे। सोने पर सुहागा इससे अच्छा नंदिनी के लिए लड़का मिलना मुश्किल था। नंदिनी बड़ी भाग्यवान थी जो संतोष जैसा लड़का उसे मिल रहा था। स्वयं बात चलकर आयी थी। वे मना नहीं कर सके। वे तो इसी प्रतीक्षा में थे कि कोई मौका मिले जिस कारण नंदिनी और संतोष की बात चलाई जाए। मानों अब तो नंदिनी के माता-पिता की इच्छा पूरी हो गई थी। वैसे हर माता-पिता की इच्छा होती है कि अपनी लड़की के लिए उचित वर मिले। लड़का कमाऊ हो, अपनी लड़की को खुश रखे। संतोष में यह सारी खूबियाँ थीं। संतोष को किसी भी प्रकार की कोई भी गलत आदत नहीं थी। वह सीधा-साधा एक सरल युवक था। नंदिनी और संतोष को एक साथ परिकल्पना करने पर लगता था, मानों ईश्वर ने इन दोनों की जोड़ी फुरसत में बनाई है। साक्षात् राधा-कृष्ण की जोड़ी लगती थी। दोनों परिवार वालों को एक दूसरे की बेटी और बेटा पसंद थे। सबकुछ तय हो चुका था। अब इंतजार था तो विवाह मंडप में भँवरी का। जिस कारण ऊपर से बनकर आयी जोड़ी का औपचारिक बँधन पूरा हो सके। दोनों परिवार ने उलटी

गिनती गिनना शुरू कर दिया था। दोनों परिवार आने वाले सुखद पलों की खुशियों से आल्हादित हो चुके थे। खुशियाँ उनके चेहरों से साफ-साफ छलक रहीं थीं। रिश्ते-नाते, सगे-सम्बन्धी, समाज में यह बात दूर-दूर तक फैल गई थी। सभी प्रतीक्षा में थे कि इन दोनों का ब्याह जल्द से जल्द हो जाए।

स्टेशन पर आये माता-पिता ने आँखों में खुशी और दुःख के आँसुओं से नंदिनी को बिदाई दी थी। खुशी इस बात की कि नंदिनी की सगाई एक अच्छे घर में हुई थी। और दुःख इस बात का कि नंदिनी अब पराई हो जायेगी। बीस साल तक वह उनके पास पली बड़ी, ममत्व, वात्सल्य को भर-भर कर लुटाया गया था। इसके लिए अब नंदिनी कहाँ रहेगी। नंदिनी की आँखों से आँसुओं की धारायें बहे जारहे थे। पर उसने शीघ्र ही अपने आप पर काबू पा लिया था। ताकि माँ और पिताजी उसकी अधिक चिंता न करें।

उधर ट्रेन की घोषणा की जा रही थी कि "गाड़ी नं० ....नागपुर से मुंबई जाने वाली नंदीग्राम एक्सप्रेस प्लेट फार्म नं. 2 से रवाना होने के लिए तैयार है।"

गाड़ी के इंजन ने दो बार आवाज दी और गाड़ी ने नांदेड का प्लेट फार्म छोड़ना शुरू कर दिया था। सभी रिश्तेदारों, सम्बन्धियों, मित्रों ने अपने-अपने लोगों को हाथ हिलाकर बिदाई दी थी। नंदिनी दरवाजे पर खड़ी हो अपने माता-पिता को देखकर हाथ हिलाए जा रही थी। उधर नंदिनी के माता-पिता भी यही क्रिया कर रहे थे। जब तक प्लेट फार्म से गाड़ी ओझल न हो जाये तब तक यही क्रम चल रहा था। दोनों भी एक दूसरे के आँखों से ओझल तो हो गये थे। पर यादों का क्या जो धुन्धले होकर भी समय और प्रसंग पाकर पुनः लौट आते हैं। नंदिनी ने ट्रेन के नल को खोला और आँसुओं से भीगे चेहरे को धोने लगी। मुँह पोछते हुए खिड़की के पास वाली रक्षित कुर्सी पर बैठ गई। सीट नंबर सात पर बैठी सोचने लगी। माथे से पसीने की धाराएँ लगातार बह रही थीं। गुलाबी पल्लू के छोर से वह पसीना पोछने लगी थी।

नंदिनी को संतोष पसंद होने के बावजूद भी वह उससे विवाह नहीं करना चाहती थी। उसने संतोष को मन ही मन अपना पति परमेश्वर मान लिया था। यह उसका सौभाग्य था कि संतोष उसे जीवन साथी के रूप में मिलने वाला था। पर वह उससे विवाह नहीं करना चाहती थी। पर क्यों? ऐसी क्या बात हो गई कि नंदिनी संतोष से विवाह नहीं करना चाहती थी? वह संतोष के साथ विवाह को धोखा, पाप समझ रही थी। शायद नंदिनी के अतीत में कुछ हुआ था। जिस कारण वह संतोष से हमेशा के लिए दूर जाना चाह रही थी।

नंदिनी को उस रात की घटना याद आ रही थी। जिस दिन वह कॉलेज गैदरिंग से देर रात सूनी सड़क से अकेली लौट रही थी। उस दिन सड़क पर खतरा होने के बावजूद भी वह अकेली सड़क से गुजर रही थी रूम पर जाने के लिए। सड़क

के एक मोड़ पर कुछ गुंडे जुआ खेल रहे थे। नंदिनी ने बड़े साहस के साथ वहाँ से गुजरना चाहा था। पर उन हवस के पुजारी गुंडों की नजर देर रात गुजरने वाली उस अकेली लड़की पर पड़ी। रात और अकेली लड़की के कारण उनमें वासना का शैतान जागता था। उनके द्वारा नंदिनी का रास्ता रोका गया था।

"हाय मेरी छम्मक छल्लो इतनी रात में कहाँ जा रही हो?"

दूसरा "ऐ जाने मन आजा मेरी बाँहों में....."

ओठों को चबाते, शर्ट का बटन खोल कर छाती पर हाथ घुमाते हुए हवस भरी नज़र से "प्यास बुझा दे मेरी, ऐसी जवानी को जाया मत कर मेरी जान।"

उसके बदन से छेड़ खानी हो रही थी। तीसरा उसके बदन को सूंघ रहा था। वह चीख रही थी, चिल्ला रही थी। धीरे-धीरे उसके शरीर से कपड़े फाड़े जा रहे थे। कपड़े उतारे जा रहे थे। रात भी विवश थी कुछ ना कर पाने का शायद दर्द भी उसे था। हवायें मानों कुछ समय के लिए रुक गई थीं। उस समय के लिए मानो सारा शहर गहरी निद्रा में लिप्त हो गया था। सड़क भी अपने सामने सबकुछ घटित होते हुए देख रही थी। वह भी मानो सूनी आँखों से भीतर ही भीतर रो रही थी। तीनों के वासना की भूख अब तीव्र हो चुकी थी। तीनों के सम्मुख परोया हुआ लजीज खाना था। और वे भेड़िये की भाँति उस अबला मासूम अकेली लड़की पर टूट पड़े थे। उसका शरीर उन गुंडों के शरीर से दब रहा था। उसने बहुत कोशिश की कि वह अपने आप को छुड़ाये। पर भेड़िये के शिकंजे में फँसी जान कब तक छट-पटाने वाली थी। सभी ने बारी-बारी से उस बेबस के शरीर से दुष्कर्म कर दरिन्देपन के सुखों का आनंद उठाया था। उनकी दरिंदगी यहीं थमती तो ठीक था। पर उन्होंने उसे शहर की गुमनाम गली के गुमनाम कमरे में तीन महीनों तक रखा था। तीन महीनों तक वह उनसे लुटती रही थी। लगातार लुटते रहने से वह बाहर और भीतर पूरी तरह थक चुकी थी। जब उनकी हवस मिट गई थी, तब उन्होंने उसे जिस्म बेचने वालों के यहाँ बेच दिया था। उन्होंने उसे पूरी तरह भोगा था। शरीर और रुपयों से....।

वेश्यालय में वह रोज नए-नए लोगों के साथ जबरन बिस्तर बदल रही थी। अब वह धंधे पर बैठ गई थी। अपनी मर्जी से...। उसे भागने का मौका मिला था, पर अब वह वहाँ से नहीं जाना चाहती थी। अब उसके लिए अपना परिवार बेगाना हो गया था। वह घर से आते हुए कहकर आई थी कि, "मुझे डिस्टरब न करें। जब मुझे समय मिलेगा तब मैं आपसे बात कर लूँगी।"

उसने होस्टेल छोड़ दिया था। उसने किराये पर एक कमरा ले लिया था। यहाँ वह अकेली रहा करती थी। अब उसकी खोज-खबर लेने वाला कोई न था। सिवाय अपने घरवालों के.....। ट्रेन की खिड़की के पासवाली कुर्सी पर बैठी नंदिनी के सामने व सारा दृश्य जीवित हो उठा था। वह घबराई हुई सी अपने पैरों को सटाकर दोनों

हाथों से भीच रही थी। मानों वह हादसा उसके साथ फिर से होने वाला है। उस रात ने उसकी जिन्दगी ही बदल दी थी। उसके सपने अब सपने ही बन गए थे। अपने माता-पिता की वह पहली संतान थी। वे दो बहने थी। दूसरी बहन अपने माता-पिता के साथ ही रहा करती थी। जब से वह अपनी मर्जी से शरीर बेचने लगी थी, तब से उसने अपने घर पैसे भेजना शुरू किया था। पिता के पूछने पर उसने बताया था कि, "पापा, मैं एक कम्पनी में पार्ट टाइम जॉब कर रही हूँ। मुझे रुपये भेजने की जरूरत नहीं। मैं अब कमाने लगी हूँ। मैं ही आप को रुपये भेजूँगी। और हाँ, मेरी और छोटी के विवाह की चिंता ना करना।" उसके पिता को भी लगा कि चलो नंदिनी अपने पैरों पर खड़ी हो गई। अब कोई चिंता की बात नहीं। अपनी अल्प आय के कारण नंदिनी के पिता अक्सर परेशान रहा करते थे। अल्प आय और दो-दो बेटियाँ .....पढ़ाना-लिखाना और विवाह का खर्च....। और नंदिनी भी अच्छी तरह से अपने पापा की परेशानी को जानती थी। वह बोझ बनना नहीं चाहती थी। भले ही उसके माँ-बाप उसे बोझ न समझे। पर वह कुछ करना चाहती थी। जिससे उनका कुछ बोझ कम हो जाए। शायद इसीलिए वह अपनी मर्जी से धंधे पर बैठ गई थी। उसने अपनी बहन के लिए आत्महत्या का मार्ग न चुनते हुए यह मार्ग चुना था। वह नियमित घर पर पत्राचार करती या फोन पर बातें करती। अक्सर वह कहती थी कि, "पापा, मम्मी मेरी चिंता ना करो, मैं यहाँ बेहद खुश हूँ। "उसने एक फ्लैट खरीद लिया था।" यहाँ मैंने नया फ्लैट ले लिया है। मैं तुम्हें जल्द ही अपने पास बुला लूँगी।" अपनी पुत्री को खुश देखकर माता-पिता बड़े खुश थे। अब की बार वह छुट्टियों में घर आई थी। उसके लिए संतोष का चयन किया गया था। सबकुछ उनकी नज़रों में सुखद हो रहा था।

नंदिनी अब मुंबई पहुँच चुकी थी। लगभग दो महीने बीतने के बाद उसके पिता को लगा कि अचानक अपनी बेटी से मिल आयें। वह कौन सी नौकरी करती है? फ्लैट कहाँ है? वह सब कुछ देखना चाह रहे थे। इसीलिए एक दिन वे मुंबई चले आये थे। मुंबई के एक स्टेशन पर वे उतरे थे। और नंदिनी के बताये पते पर चल पड़े थे। उधर नंदिनी रोज की तरह धंधा कर रही थी। सड़क पर सजधज कर खड़े होना और शरीर सुख के अभिलाषी लोगों को आकर्षित करना उसका नित्य कर्म था। उससे मिलने वाले रुपयों पर उसका जीवन बीत रहा था। उस दिन भी वह सड़क के किनारे खड़ी होकर आने जाने वाले लोगों के सम्मुख "ये आता क्या....? ये चलना....। ये चिकने आता क्या....? ये सेठ जरा माल तो देख....।" वह उस एरिये की सबसे खूबसूरत गणिका मानी जाती थी। पर आजकल कभी-कभी ग्राहकों के मुँह मोड़ लेने पर वह सड़क के किनारे खड़ी होकर अपना धंधा कर रही थी।

नंदिनी के पेट का उजला, गोरा और चमकता हिस्सा तथा उसपर नाभि की

खूबसूरती ने आने जाने वालों को अपने मोहपाश में बाँध रखा था। वह उस दिन भी तैयार होकर खड़ी थी। ऐसे में नंदिनी के पिता उस सड़क से होते हुए जा रहे थे। अचानक उनकी नजर नंदिनी पर पड़ी थी। और नंदिनी ने भी अपने पिता को देख लिया था। नंदिनी को देखते ही उसके पिता को बहुत बड़ा झटका लगा था।

"नंदिनी और गणिका, वह नौकरी, फ्लैट सब कुछ झूठ था।"

मानो किसी ने पाँव तले की जमीन अचानक खींच ली थी। नंदिनी ने बिना देरी किये। चेहरे पर कोई भाव न लाते हुए, अंजान लड़की की तरह अपने ही पिता को जिस्म दिखाते हुए कहने लगी थी,

"ऐ सेठ, आता क्या? देख कैसा माल है। शमरता है क्या? चल अन्दर, मजा आ जायेगा।" नंदिनी ने न जाने किस तरह यह सब कुछ कर लिया था। वह कैसे पत्थर बन गई थी। उसने अपने सीने पर न जाने कौन सा पत्थर रख लिया था। जो अपने ही पिता के सामने इस तरह....। उसके पिता को उस लड़की का इसप्रकार का व्यवहार देख, लगा कि,

"नहीं यह नंदिनी नहीं हो सकती, नंदिनी और ऐसी निर्लज्ज, कतई नहीं हो सकती। यह तो नंदिनी जैसी दिखने वाली कोई और लड़की है।"

वे नंदिनी ने बताये पते पर पहुँच चुके थे। इधर नंदिनी ने बहुत बड़ा नाटक किया था। यह उसके जीवन का सबसे भयानक दिन था। वह बहुत बड़ी विपत्ति से बच गई थी। उसे कठोर बनना था। यदि कठोर नहीं बनती तो उसके पिता को उसी समय सदमा लगता और शायद कुछ....। अब उसे नया किरदार अदा करना था। पिता जी के घर पहुँचने से पहले ही वह घर पहुँच चुकी थी। पिता ने अपने पुत्री को देखा और उनके खुशी का ठिकाना न रहा था। वह जो सब कुछ हो गया था, नंदिनी को देखकर भूल गये थे। पिता और पुत्री के भेंट से दोनों प्रसन्नता के अनंत आकाश में उड़ान भरी हुई थी।

नंदिनी ने अपने लक्ष्य के बारे में बताया था। वह कलेक्टर बनना चाहती थी। वह अभी इतनी जल्दी विवाह नहीं करना चाहती थी।

उसने झूठ-मूठ कहा है, "पापा, संतोष मुझे पसंद नहीं। मैं उससे विवाह नहीं करना चाहती। मैं उसके साथ खुश नहीं रह सकती।"

◆

6
कुछ यादें

1991 का तहसील किनवट। महाराष्ट्र के नांदेड जिले का आदिवासी परिक्षेत्र। पिता जी को सहकारी खाते में नौकरी होने के कारण पाँच साल पहले तहसील हदगांव से किनवट में तबादला हो चुका था। उस समय कोई भी किनवट में नौकरी करने के लिए आने से डरता था। क्योंकि नक्सलवादी की दहशत लोगों में थी। उस समय विजय कुमार नामक नक्सलवादी की अधिकतर धनिकों में दहशत थी। वह एक पढ़ा लिखा युवक था। जो विपरीत परिस्थितियों के कारण नक्सलवादी बन गया था। पुलिस बल और एस.आर.पी.एफ. के कारण लोग अपने-आपको सुरक्षित पा रहे थे। मैं उस समय कक्षा नौ में पढ़ाई करता था।

मैं रोज सुबह पाँच बजे उठता था। और दक्षिण की ओर जहाँ लोग सुबह उठकर टहलने के लिए जाते थे। मैं भी घर से लेकर पैन गंगा नदी पर बने पुल तक दौड़ लगाता था। साथ में हमारे बचपन के साथीदार भी हुआ करते थे। आतिश, दुर्गा, अविनाश आदि। हममें शर्त लगती थी कि बिना थके कौन पहले पैनगंगा नदी पर बुने पुल तक पहुँचता है। और हम अपने-आप को श्रेष्ठ साबित करने के लिए पुल के पार दूर जंगल तक चले जाते थे। कभी-कभी तो जंगल के भीतर तक जाते थे। किनवट का जंगल बहुत घना था। चारों ओर सिर्फ पेड़ ही नजर आते थे। यहाँ विभिन्न प्रकार के वृक्ष थे। वहाँ सागुन, शीशम, चन्दन, पलाश, नीम, बबूल और न जाने कई प्रकार के जंगली फूल-पौधे थे। वह प्रकृति का सौन्दर्य मोहक था। मुझे प्रकृति का यह सुन्दर रूप अधिक भाता था। सो जब भी समय मिलता मैं अपने साथियों के साथ चला जाता था। यहाँ कभी मयूर की मीठी आवाज आती तो कोयल की सुमधुर आवाज सुनाई देती थी। वह आवाज हमें इतनी अच्छी लगती कि हम भी उसकी नकल करने लगते थे। धीरे-धीरे हमने उन पक्षियों की आवाज को हुबहू नकल करना सीख लिया था। जब भी हम जंगलों में पक्षियों की आवाज निकालते तो मयूर या कोयल भी प्रति आवाज निकालते थे। जैसे ही प्रति आवाज सुनाई देती तो हमारे खुशी का कोई ठिकाना नहीं रहता था। मानों वे हमसे बात कर रहे हों और वे हमारे आने की प्रतीक्षा में ही पलक-पावडे बिछाये शहर से आने वाली सड़क पर नजर गड़ाए रहते थे। वैसे प्रकृति के सानिध्य में रहने से हम यहाँ रहने वाले जीव जंतुओं की भाषा बहुत हद तक समझ सकते थे। कब वह खुश होते हैं, कब वे नाराज, दुखी रहते

हैं। कब उन्हें भूख लगती है आदि। पशु-पक्षियों पर प्रेम करने से एक अलग प्रकार के आनंद की प्राप्ति होती है। हमारे घर में भी हमने एक कुत्ता और एक बिल्ली पाल रखी थी। कुत्ता और बिल्ली प्राकृतिक दुश्मन होते हैं। पर हमारे साथ रहने से वे गहरे दोस्तों की तरह रहते थे। जब भी कोई अन्य बड़ी बिल्ली हमारी बिल्ली को तंग करती तो हमारा कुत्ता दौड़कर उसकी रक्षा करता था। जब हम चार भाई मिलकर क्रिकेट खेला करते तो कुत्ते और बिल्ली भी फील्डिंग का कार्य किया करते थे। बिल्ली अक्सर किप्रिंग किया करती थी। जैसे ही गेंद पीछे आती उछलकर उसे पकड़ लेती थी। और हमारा कुत्ता वहाँ से गेंद ले आता था। उनके घर में रहने से हमे कभी अकेलापन महसूस नहीं होता था। वे हमारे घर के सदस्य बन गये थे। जब हम भोजन करते तब उन्हें भी साथ में भोजन करवाया जाता था। उन्हें कब भूख लगती है, कब वे हमसे नाराज हैं। उनके साथ रहने से हमें पता चल गया था। जैसे बच्चे अपने माता-पिता के बाहर जाने के बाद आने की प्रतीक्षा करते हैं, वैसे ही हमारा कुत्ता और बिल्ली भी प्रतीक्षा करते थे। जैसे ही शाम को पिताजी ऑफिस से घर आते तो बिल्ली पिताजी के पैंट से होते हुए शर्ट पर और कंधे तक पहुँच जाती थी। पिताजी उसे जब हाथ में लेकर प्यार करते तब वह खुश होती थी। और कुत्ता भी जोर-जोर से उछल कूद करता था। मनो वह खुशियाँ मना रहा हो। इन बेजुबान जानवरों के साथ रहने से कब उनके साथ लगाव हो जाता है और कब वे घर के सदस्य बन जाते हैं पता ही नहीं चलता। जब दोनों की मृत्यु विभिन्न कारणों से हुई थी। तब एक महीने तक हमारा मन नहीं लगा था। हमं भोजन भी जहर लगता था। कभी-कभी वे सपनों में आ जाया करते तो आनंद की प्राप्ति होती थी। उसके बाद जब भी हम परिवार के सदस्य साथ बैठते थे और उनका जब भी विषय निकलता, तो वे यादें ताजा हो जाया करती थीं। और उस दिन का एक विषय वह भी बन जाता था।

पक्षियों की आवाज को जो हमने जंगल में सीखा था। उसे हमने दोस्तों को घर से बाहर बुलाने का माध्यम बना लिया था। हर काम के लिये अलग-अलग आवाज और ध्वनि होती थी। कभी कोयल की आवाज, कभी मयूर की आवाज तो कभी सीटी बजाकर या जबान से 'टक' की आवाज कर हम दोस्त अपना कार्य सिद्ध कर लिया करते थे। जब भी कोई त्यौहार आने वाला होता तो हम उसकी प्रतीक्षा महीनों पहले से किया करते थे। और दोस्तों की मीटिंग में तय किया जाता कि इस बार आने वाले त्यौहार में क्या-क्या करना है। होली, दीवाली, दशहरा, गणपति उत्सव हमारे पसंदीदा उत्सव और त्यौहार हुआ करते थे। इन सब में होली एक नंबर पर थी। होली के लिए सब मिलकर कार्य किया करते थे। गोबर को इकट्ठा कर उसकी विभिन्न आकारों वाली मालायें बनाई जाती थीं। गोबर के उपले बनाये जाते थे। साथ में होली के लिए लगने वाली सूखी लकड़ियाँ इकट्ठा किये जाते थे। सूखे गोबर

तथा लकड़ियों के लिए हम नदी पार तक चले जाया करते थे। हमारे साथ इसे जमा करने के लिए एक थैला हुआ करता था। इन्हें इकट्ठा करने के लिए नदी पार और जंगलों से सटे खेतों में चले जाया करते थे। वहाँ आम के पेड़ पर लगी हुई खट्टी-मीठी अमिया को देखकर दोस्तों की नियत में खोट आ जाया करती थी। ना-नुकुर करते, खेत के मालिक, बागबान से डरते हुए पत्थर से आम गिराए जाते थे। तो हमारे भीतर कुछ साहसी दोस्त थे जो पेड़ पर जाकर आम तोड़ते थे। जो दोस्त पेड़ पर चढ़ा हुआ है, वह आम तोड़-तोड़ कर नीचे फेंकता था। हम तोड़ कर फेंके गये आमों को इकट्ठा करते और बाद में आपस में बाँट लेते थे। पर हर बार ऐसा नहीं होता था। कभी आम का बागबान देख लेता तो वह हमारे पीछे हाथ धोकर पड़ जाता था। ऐसे में हम जो नीचे आम इकट्ठा करने वाले पहले भाग निकलते थे। पर ऊपर आम के पेड़ पर जो था, उसके साहस की सारी हवा निकल जाती थी। वह हड़बड़ाहट में जिस डाली पर है, जहाँ है, वहीं से ही नीचे कूद पड़ता। इतनी ऊँचाई से कूदने के कारण उसे चोट आती या पैर मुरझा जाता था। ऐसे में भागना तो दूर चलना भी मुश्किल हो जाता था। पर बागबान के भय से वह भूल जाता की उसे मार लगा है या मोच आई है। वह वैसे ही दोस्तों के पीछे दौड़ने लगता था। और नदियाँ पार कर हम लोग घर के करीब-करीब पहुँचने पर ही रुकते थे। हर रोज सुबह दौड़ने का फायदा ऐसे समय हो जाया करता था। बागबान को हम कुछ ही पलों में पीछे छोड़ आते थे। बागबान कुछ दूरी तक पीछा करता और बाद में हाफने लग जाता था। वह समझ जाता था कि इन बच्चों को पकड़ना इतना आसान नहीं है। जब हम दौड़कर घर के करीब आकर रुकते तब जो पीछे रह गया था। जिसे पेड़ पर से कूदने के बाद पैर में मोच आ गई थी। वह भय के मारे भागते-भागते ठीक हो जाती थी। वहाँ से भागते समय हम जितने आम हाथों में, हाफ पैंट (चड्ढी) के जेबों में भर सकते थे भर लेते थे। और वह बेचारा जो आम तोड़कर भी खाली हाथ भाग आया था। उसे उसके हिस्से के आम दिए जाते थे। इस पर वह मोच, खरोंच आदि सब कुछ भूलकर पूर्ववत अन्य योजना में जुट जाता था। कहीं से चोरी करना तो गलत बात है। चाहे वह किसी के खेते के आम को क्यों न चोरी छिपे तोड़ना हो, वह भी चोरी ही थी। चोरी आखिर चोरी ही होती है। उस समय हमें बताने वाला कोई न था। पर खैर बचपन-बचपन ही होता है। चाहे कोई भी कितना ही क्यों न समझाये, बच्चों को जिस कार्य को करके आनंद की प्राप्ति होती है, वह करके ही रहता है। इसीलिए कुछ गलतियों के लिए सजा तो होनी ही चाहिये। सो जैसे ही हमारे माता-पिता को पता चलता तो अच्छी खासी धुलाई भी हो जाया करती थी।

जितनी भी सूखी लकड़ियाँ, गोबर की मालायें बनती उसे होली में तिरोहित कर दिया जाता था। बच्चों की मीटिंग में होली के लिए विशेष गालियाँ इजात की

जाती थीं। हर गाली पिछले साल की गाली से भिन्न होनी चाहिए थी। गली के किस व्यक्ति को कौन सी गाली देनी है, पहले से ही तय कर लिया जाता था। यह गालियाँ उनके लिए होती जिसने हमें साल भर परेशान किया था। इस दिन हम बिनधास्त गालियों का प्रयोग कर सकते थे क्योंकि इस दिन हमें गाली देने पर कोई नुकसान नहीं पहुँचा सकता था। इस दिन हमारे लिए सब कुछ माफ था। गली में जो भी हमारे दुश्मन होते वे घर में दुम-दबाकर बैठते थे। और हम जान बूझकर उनके घर के सामने जाकर गलियाँ देते थे। गलियाँ देना हमने अपने बड़ों को देखकर सीखा था। होली मतलब रंग, गाली होती है। यही हमने समाज से सीखा था। बच्चे तो अनुकरण प्रिय होते हैं। जो देखते हैं वही सीखते हैं। यदि बड़े लोग बच्चों के सामने आदर्श होली खेलेंगे तो बच्चे भी वही सीखेंगे। और हम राष्ट्र के लिए नई पीढ़ी का निर्माण कर पाएंगे। उत्सवों और त्यौहारों का चलो हम आदर्श रूप आने वाली पीढ़ी के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं। आदर्श व्यक्ति, आदर्श समाज, आदर्श राष्ट्र। होली बच्चों के लिए जितनी आनंदायक होती, उतनी ही बड़ों के लिए भी होती थी। जब होली में उत्साह चरमोत्कर्ष पर पहुँचता तब तक गालियाँ देने के लिए कोई न बचता था। ऐसे में चिल्ला-चिल्लाकर आवाज भी बैठ जाती थी। और अंत में दोस्त आपस में एक-दूसरे के कपड़े फाड़ते थे। तब हमारी होली हाफ पैंट (चड्ढी) पर ही होती। हमारे चेहरे ऐसे रंगे होते कि हमारे सिवाय हमें हमारे माता-पिता भी पहचान नहीं पाते थे। इसका फायदा भी हम खूब उठाते थे। एक दिन पहले पकड़कर रखे गये गधे की सवारी एक के बाद एक करते। हम गधे की सवारी ऐसे करते थे, मानो हम कहीं के राजा-महाराजा हों और हमारी सवारी प्रजा के बीच जय घोष के साथ जा रहे हों। जब दिन के बारह-एक बजने को होते तब सभी दोस्तों का होली खेलने का उत्साह कम हो जाता था। और हम एक दूसरे को देख कहते,

यार, चलो अब बहुत हुआ नहाने चलते हैं।

और नहाने के लिए नदी की ओर चल पड़ते थे। नदी पर हमारे जैसे अन्य गली के लड़के भी नहाने के लिए इकट्ठा होते थे। नदी में जमकर नहाया जाता था। जब दिल भर जाता तो घर लौट आते थे। नहाने से भूख बहुत लगी होती थी। घर जाने पर पेट भर खाना खाया जाता था। और फिर सुस्ताने का समय होता था। शाम होते ही होली खेलकर थके हुए दोस्तों की थकी हुई मीटिंग होती थी। जिसमें सिर्फ थकी हुई बातें ही होती थीं।

जब दूसरा दिन निकलता तब हमने जिसे-जिसे गालियाँ दी थीं वो शक्स हमें घूरकर देखता हुआ जाता था। हम भी डरने का अभिनय करते और जैसे ही वह शक्स थोड़ा सामने जाता तो सभी दोस्त जोर-जोर से हँसने लग जाते थे। इससे वह शक्स और भी आग बबूला हो जाया करता था। और जोरों से चीखते हुए हमारी ओर दौड़ते

हुए आता। जैसे ही वह हमारी ओर आता दिखाई देता तो हम या तो इधर- उधर भाग जाते या घर में जाकर छिप जाते थे। और जब माँ हमें इस अवस्था में देखती तो हम उस शक्स की शिकायत करते कि वह हमें मार रहा है। गलियाँ दे रहा है। तब क्या। सबकी माँयें झाँसी की रानी बनकर बाहर आतीं। और एक साथ गालियों की बौछार उस शक्स पर करती थी। वह बेचारा तत पैपे करता नारी शक्ति के रौद्र रूप के सामने भीगी बिल्ली बन जाता था। और शस्त्र समर्पण करते हुए माफी मांगकर चला जाता था। और हम माँ के सामने शेर बन जाया करते थे। माँ के सामने ही मुँह लटकाएँ खड़े उस शक्स को टेढ़ा मुँह कर चिढ़ाते थे। क्योंकि हमें पता था कि यह हमारी माँओं के सामने कुछ भी नहीं कर सकता है। क्यों न मौके का फायदा उठाया जाय। हम मौके का पूरा-पूरा फायदा उठाते और कुछ करने में अक्षम वह बेचारा बेबस खड़ा रहता था। वह भीतर से सोचता कि,

बच्चों आज माँ के सामने शेर बने हो, एक-एक को देख लूँगा।

और हमने भी जैसे उसके मन की बात समझ ली हो, इसीलिए उसे हाथों के इशारों से कहते

जा तुझे जो करना है, सो कर ले। हम तेरे जैसे लल्लू पंजू से नहीं डरते।

वैसे हमने कभी किसी को जानबूझ कर परेशान नहीं किया था। पर जो हम बच्चों को परेशान करता था। उसे हम जरूर सबक सिखाया करते थे। और दुश्मन पक्ष इसे हमेशा याद रखता था।

उस समय हमारे पास रोकेल पर चलने वाला स्टो, भूसे की सिगड़ी होती थी। कई बार भूसे और रोकेल के न मिल पाने के कारण लकड़ियों को चूले में जला कर खाना पकाया जाता था। लकड़ियों के चूल्हे पर बने खाने का स्वाद ही कुछ और ही हुआ करता है। मुझे लगता है कि आज के गैस सिगड़ी पर भी वह बात नहीं आ सकती। लकड़ी के चूल्हे के जहाँ कई फायदे हैं। वहीं कई नुकसान भी थे। लकड़ियों को जलाना, फुकनी से आग बढ़ाना। साथ में आँखों में जाने वाला जानलेवा धुवाँ भोजन बनाने वाले की परीक्षा लेता था। धुवाँ घर में चारों ओर फैल जाता था। धुवाँ घर में फैल जाने के कारण हमें बड़ी परेशानी होती थी। धुवें से घर की टिनोवाली छत और दीवारें काली हो जाती थी। जिस का एक फायदा भी यह होता कि मच्छर आदि या तो मर जाते या घुसपैठियों के समान जैसे आये थे वैसे ही पलायन कर जाते थे। जिस कारण डेंगू, मलेरिया जैसी बीमारियों का सवाल ही नहीं उठता था। जब भी हमारे घर में मच्छर होते थे। तब माँ सूखे गोबर का उपला जलाती और उसके धुवें को घर में फैलाती थी। जिसका परिणाम यह होता कि घर में एक भी मच्छर नहीं होता था। गाँवों में तो घर की दीवारें, आंगन गोबर से ही लिपे होते हैं और आंगन में एक नीम का पेड़ जरूर होता है। जिससे वहाँ मच्छर हमला करने के बारे में सोच

भी नहीं सकते थे। आज की तरह हर घर में मोस्कीटो कोइल आदि नहीं होते थे।

चूल्हे के लिए लगने वाली लकड़ी द्वार पर ही खरीद ली जाती थी। क्योंकि जंगलों में बसे टांडे, गाँव के बंजारा, आदिवासी स्त्रियाँ जंगल से चुन-चुन कर लाई हुई लकड़ियों का गट्ठर सर पर उठाकर घर तक ले आते थे। वे जोरों से आवाज लगाते, मोली ध्या, मोली। मोली अर्थात् सूखी लकड़ियों का गठ्ठर। जिसे खरीदना है, वह मोली बेचने वाली की आवाज सुनकर बाहर आता और भावतौल कर सौदा पक्का किया जाता। बड़ी-बड़ी, लम्बी लकड़ियों का गट्ठर दस रूपये, पन्द्रह रुपये तक मिल जाया करता था। आज उतनी ही लकड़ियाँ शायद पाँच सौ रूपये में मिलती होंगी। उस समय लकड़ियाँ बेचने वालों को और हमारे लिए लकड़ियाँ जीवन आवश्यक वस्तु बन गई थी।

लकड़ियाँ बेचने वाली स्त्रियाँ पाँच से छः के समूह में घूमा करती थी। जब तक सबकी लकड़ियाँ ना बिक जायें तबतक वे एक-दूसरे का साथ नहीं छोड़ती थी। जब सबकी लड़कियाँ बिक जाती तो सभी स्त्रियाँ बाजार से जीवनावश्यक चीजें खरीद कर ले जाया करती या फिर किसी और कार्य के लिए इकट्ठा करती थी। उनका जीवन मानो इसी पर चल रहा था। लकड़ियाँ बेचकर जो रुपये आते उससे राशन आदि खरीदी जाती थी। जब वे लकड़ियाँ चुनने के लिए जाती तो साथ में पेड़ों पर लगा गोंद भी जमा करती। उसे सुखाकर दुकानों पर बेचती थी। दुकानदार उनसे सस्ते दामों पर खरीदता और ऊँचे भाव में बेचता था। उसकी तो बैठे बिठायें कमायी हो जाया करती थी। जो मेहनत करता है, अक्सर ऐसा होता है कि उसे जो अपने परिश्रम की कीमत मिलती है, वह मिलती नहीं। मौसम के अनुसार वे कभी तेंदू का फल जो बहुत मीठा होता है। वह चारोली जो छोटे-छोटे बेर जैसे काले होते हैं। बेहद मीठे तथा रसीले होते हैं। तो कभी सीताफल इकट्ठा कर वे स्त्रियाँ उसे बेचने के लिए आती थी। वे जंगल से शहर तक का दस-बारह किलो मीटर लम्बा रास्ता पैदल नंगे पैर तय किया करती थी। बेचकर उसी रास्ते पैदल जाया करती थी। उन्हें इसकी आदत पड़ चुकी थी। सो उनको थकान कम ही महसूस होती थी। अपनी माँ के प्रतीक्षा में उनके बच्चे झोपड़ियों के बाहर खड़े रहते थे। जैसे ही उनकी माँ उनको दिखायी देती थी। वैसे ही खुशी से दौड़कर माँ के पास जाया करते थे। जो माँ अपने छोटे बच्चों को उठा सकती थी, वह उसे कमर पर उठा लेती थी। पटा-पट उनकी चुम्मी लेकर सुख प्राप्त करती थी। माँ की कमर पर वे ऐसे बैठते थे, जैसे उन्होंने कोई किला फतह करली हो और विजय का जश्न मना रहे हों। वे स्त्रियाँ मेहनत कश थी। उनके ही परिश्रम स्वरूप हमें लकड़ियाँ घर पर आसानी से मिल जाया करती थी। एक ओर जंगल का जीवन था तो दूसरी ओर जंगल से सटे शहर का जीवन था।

♦

7
वायलिन

(1)

दक्षिण नांदेड का पुल लाँघ कर कुछ ही किलो मीटर की दूरी पर था। पहाड़ों पर बसा वसरनी गाँव। वसरनी पहुँचने के लिए चहुँ ओर से सड़के बनाई गई थीं। उस दिन वसरनी जल्द पहुँचना था। आकाशवाणी रेडियो पर रेकार्डिंग का समय दुपहर दो बजे का दिया गया था। मुझे कवि सम्मेलन हेतु बुलाया गया था। मैंने मोंढ़े से ऑटो पकड़ा और निर्धारित समय पर पहुँचने के लिए निकल पड़ा। ऐसे में मुझे याद आया कि वसरनी में मेरा एक कॉलेज का दोस्त रहता है। हमने तहसील किनवट में कॉलेज की पढ़ाई साथ-साथ की थी। वह अच्छा वायलिन वादक था। किनवट से अट्टारह किलो मीटर की दूरी पर उसका गाँव बोधड़ी था। वहीं से वह रोज अप-डाउन करता था। वायलिन ने ही हमें दोस्त बनाया था। मैं सप्ताह में दो-तीन दिन उसके पास वायलिन सीखने के लिए जाया करता था। जब तक मैं कुछ सीख पाता उसे वसरनी में नौकरी लग गई थी। और मेरी वायलिन सीखने की इच्छा अधूरी रह गई। उसके बाद जब भी हमारी मुलाकात होती। मैं वायलिन को जरूर याद करता था। मैं उसे कहता था "प्रिय वायोलिन कहाँ हैं।" वह घर पर ले जाता और मुझे वायलिन दिखाते हुए कहता" "यह रही प्रिय वायोलिन।" मैं उसे वायलिन सुनाने के लिये कहता और वह हर्ष के साथ में वायोलिन सुनाता था। मुझे वायलिन का संगीत बहुत प्रिय लगता है। सुनते-सुनते मैं अतीत-भविष्य की यादों-सपनों में खो जाता था। दोस्त भी पूरी तल्लीनता के साथ बो को वायोलिन के तारों पर घूमाता और अपेन उँगलियों से साज का निर्माण करता। वायलिन से उद्धृत होने वाले जादुई संगीत के प्रति वह भी अपने आप को समर्पित कर देता था। जब उसकी तल्लीनता टूटती मैं भी पुनः लौट आता स्वर्गीय आनंद से......। हम दोनों एक साथ आनंद में डूब जाते थे।

दोस्त इतनी जल्दी नौकरी नहीं करना चाहता था। पर घर की जिम्मेदारी उस पर ही थी। वह इस मौके को हाथ से नहीं जाने देना चाहता था। इसीलिए उसने नौकरी के मार्ग का चयन किया। वह संगीत टीचर के रूप में अंध विद्यालय में ज्वाइन हो गया था। उसके पीछे की मंशा साफ थी। उसके पिता जी नेत्रहीन थे। वे एक अच्छे गायक, संगीतज्ञ थे। उनके पिताजी को देखकर उसके मन में हमेशा यह विचार आते कि स्कूल पर तो कोई भी पढ़ा सकता है। पर अंध स्कूल पर बहुत कम। वह

चाहता तो और भी कोई मार्ग अपना सकता था। पर जिम्मेदारी के साथ उसमें समाज सेवा की भावना प्रबल रूप में थी। आज फिर से उससे मिलने का मौका मिला था। मैंने उसे फोन पर सम्पर्क किया।'' तू कहाँ हैं? मैं वसरनी आ रहा हूँ। आज रेडियो पर कवि सम्मेलन के लिए रिकॉर्डिंग हैं।'' वह बड़ा हर्षित हुआ था। ''अरे तू सच कह रहा है। यहाँ स्कूल पर जरूर आना।'' मैंने उसे रेडियो पर साथ चलने के लिए कहा था। पर वह जिद करने लगा था कि ''तू स्कूल पर आ, यहीं से हम दोनों आकाशवाणी पर चलते हैं।'' मैंने भी हामी भरते हुए कहा 'ठीक है।'

(2)

पन्द्रह मिनट पहले मैं स्कूल पर पहुँच गया था। दोस्त मेरी ही प्रतीक्षा में बैठा था। मुझे देखकर वह बेहद प्रसन्न हुआ। ''अरे आ गये, आओ चले आओ।'' पर वह दीवार के सहारे बैठा रहा। उठकर मेरा स्वागत करने के बजाये बैठकर ही मेरी आओ भगत करने लगा था। ''यार कैसे हो? बहुत दिनों बाद हमारी मुलाकात हो रही है।'' मेरे कहने पर उसने कहा, ''हाँ, यार सही कह रहा है तू, पिछली बार हम औरंगाबाद की बीवी का मकबरा के गार्डन में मिले थे। सो अब मिल रहे हैं। कैसी विडम्बना है दोस्त हम एक ही शहर में रहते हैं पर मिल नहीं पाते हैं।'' जवाब स्वरूप मैंने कहा, ''हम अपने-अपने कार्यों में इतने व्यस्त हो गये हैं कि दो पल भी हम एक दूसरे को नहीं दे पा रहे हैं।'' दोस्त जहाँ बैठा था। वहीं बैसाखी रखी हुई थी। पता नहीं किसकी थी। होगी किसी की। अब दो बजने ही वाले थे। आकाशवाणी करीब ही थी। मैंने दोस्त से कहा, ''दोस्त चलो समय हो गया है, हमें रिकॉर्डिंग के लिए अब चलना होगा।'' मेरे दो-तीन बार कहने के बावजूद भी वह जाने के लिए तैयार नहीं हो रहा था। पर थोड़ी देर बाद उसने बैसाखी पर हाथ रखते हुए कहा, ''दोस्त मैं नहीं आ सकता.....।'' मैंने दुखी स्वर में पूछा ''क्यों?'' उस पर उसने कहा, मेरा एक्सिडेंट हो गया है, मेरा बाया पैर बुरी तरह से टूट गया था। छ महीने से मैं घर पर ही था। अब जाकर ही मैं स्कूल आ रहा हूँ। मैं चल नहीं पाऊँगा। मुझे यहाँ लाने और ले जाने के लिए ऑटो आता है। ''दो कदम चलने में मुझे दर्द होता हैं। दोस्त मुझे माफ कर देना। मैं नहीं आ पाऊँगा।'' दोस्त की इस हालत का मुझे पता नहीं था। सुन कर बुरा लगा। इस अवस्था में वह मुस्करा रहा था। और भीतर से कराह रहा था। मैंने उसकी इस अवस्था को देख कहा, ''दोस्त मुझे ही माफ कर देना, मैं तुझे ऐसी हालत में चलने के लिए कह रहा था।'' इस पर दोस्त ने कहा, ''तुझे भी कहाँ पता था दोस्त, इसीलिए मैंने फोन पर तुझे नहीं बताया। मैं इनकार करता तो तुझे बुरा लगता। अब तू आ गया है। तूने अपनी आँखों से देखा मेरी इस अवस्था को....।'' मैंने कहा, ''मैं तेरी ऐसी अवस्था में साथ नहीं दे सका। मुझे पता भी नहीं था। तू छः महीनों तक....।'' दोस्त ने, ''जाने भी दे यार, छोड़ ना। वह समय ही ऐसा था कि मैं ही किसी को बताने की अवस्था में नहीं था। घर पर बिस्तर पर मैं पड़ा हुआ था। मेरी बेटी और पत्नी ने मेरा बहुत ख्याल रखा था। मेरी बेटी रोज मेरे सामने कथक नृत्य किया करती थी। मेरा मनोरंजन करती थी। मैं भी रोज वायोलिन लेकर बैठ जाता था। वायोलिन ने मेरा साथ नहीं छोड़ा। जब भी मुझे मिलने घर पर कोई आता तो मैं उन्हें वायोलिन सुनाता था। मेरे कई प्रोग्राम मिस हो गये। मैं सोच रहा था कि अब जिंदगी में फिर कभी चल पाऊँगा या नहीं। पर डॉक्टर ने राहत दी। अगले तीन महीने तक पूरी तरह चल पाऊँगा।'' दोस्त की दुःख भरी कहानी सुनकर मेरा हृदय भी द्रवित हो गया था। विद्यालय के फरसी पर बिछे चादर से उठते हुए मैंने कहा, ''दोस्त मैं आकाशवाणी पर हो आता हूँ। वर्ना वहाँ मुझ पर नाराज हो जायेंगे। किसी ने समय दिया है तो हमारा कर्तव्य है कि हम समय पर पहुँचे। दोस्त मैं चलता हूँ। लौटते समय फिर आऊंगा। और हाँ उठने की जरूरत नहीं।'' मैं चलने को हुआ तो सामने दीवार से सटी सीढ़ियों से उतर कर एक अँधा छात्र बिना दिक्कत के सामान्य ढंग से बाई ओर स्थित ऑफिस की सीढ़ियों पर चढ़ते हुए वहाँ लगे वाटर फिल्टर तक पहुँच कर ग्लास उठाया नल से पानी भरा पिया और झट से उसी क्रम में वापस लौट गया। मैं इस क्रिया को देखकर हैरान हो रहा था। जिन्हें आँखें होती हैं, वह भी इतनी तेजी से काम नहीं कर पाता, जितनी स्फूर्ति से वह चौदह-पन्द्रह साल का अँधा लड़का कर गया। मेरे पास समय की कमी थी सो मैं आकाशवाणी पर चल दिया।

(3)

मैं जब लौटकर आया तो दोस्त वहीं दीवार से सटकर फरसी पर डाले गए चटाई पर बैठा वायोलिन बजा रहा था। वायलिन से निकलने वाले मधुर संगीत में दोस्त लीन हो गया था। मैं उसके सामने जाकर बैठ गया। जब उसकी तल्लीनता टूटी तब मैं उसके सामने नजर आया। इस पर उसने कहा, ''अरे तू कब आया, मुझे पता ही नहीं चला।'' ''दोस्त मैं भी संगीत के जादू से ऐसा मोहित हो गया कि मैं कब तेरे सामने आया और कब आकर यहाँ बैठ गया। सच में तेरे इन उँगलियों में वह जादू है, जो संगीत प्रेमी को स्वर्गीय आनंद देता है।'' ''यार बस-बस मैं इतनी खुशी बर्दाश्त नहीं कर पाऊँगा। मैं तो शून्य हूँ यार, मैं कुछ नहीं करता बस हो जाता है। पर हाँ मैं तन और मन से आत्मा से वायोलिन के प्रति समर्पित हो जाता हूँ। अच्छा यह छोड़ कैसे रहा रिकॉर्डिंग।''

मैंने कहा, ''अच्छा रहा। जैसे ही सम्पन्न हुआ तो तुझे मिलने चला आया।''

ऐसे में दोस्त कोई सुंदर गीत गुनगुनाने लगा था। सीढ़ियों से खूबसूरत पर नेत्रहीन लड़की साड़ी पहने नीचे आई और पास के ऑफिस के सीढ़ियों से होते हुए भीतरचली गई। पर ऑफिस के सीढ़ियों से गुजरते हुए वह कुछ पल रुकी, कानों को दोस्त के गीतों की ओर केन्द्रित किया। सुना और चली गई। मैंने दोस्त से पूछा, ''वह

गीत सुनकर गई, वह जा रही थी पर उसके कान गीतों की ओर थे। यह कौन हैं?'' उसने कहा, ''वह यहाँ हिन्दी पढ़ाती है वह टीचर हैं।''

मैंने कहा, ''वा क्या बात है, पर यार उसे दिखाई नहीं देता। वह ऊपर सीढ़ियों से उतरी और ऑफिस के सीढ़ियों से होते हुए कक्षा में चली गई। यह सब कुछ वह कैसे कर लेती है? यहाँ आँख होकर भी लोग अंधों की तरह व्यवहार करते हैं। उसके कान कितने तेज हैं। शायद नेत्रहीन ज्यादा अच्छी तरह से सुन सकते हैं।''

दोस्त ने कहा, ''सच कहा तूने, उन्हें यहाँ के सारे रास्ते याद हो गये हैं। वे बेदिक्त कभी भी कहीं भी आ जा सकते है। ''ऐसे में दोस्त करवट बदलने की कोशिश कर रहा था कि अचानक पैर में दर्द उत्पन्न होने से उसके मुँह से पीड़ा भरी ''आह....'' की आवाज निकली। मैंने उसे सम्हालने की कोशिश की, बाजु में रखी पानी की बोतल का ढक्कन निकाल कर उसके मुँह से लगाया। वह लगभग आधी बोतल पानी पी गया। और कुछ क्षण शांत बैठा रहा। उसने कहा, ''यार जब एक्सिडेंट हुआ और पैर की हड्डी टूट गई तब ऐसा लगा कि मैं अब कभी फिर से नहीं चल पाऊँगा। मैं भी अपाहिज हो जाऊँगा। उस समय मुझे जन्म से अपाहिज कई लोगों की याद आई। कई लोग पैरों से चल नहीं सकते, कइयों को हाथ ही नहीं, तो कई नेत्रहीन अपाहिज लोग हैं। वे किस दर्द से गुजरते होंगे। वे भी सोचते होंगे की काश मुझे पैर होते, हाथ होते, नेत्र होते। पर दोस्त उनकी एक बात है कि वे इस पीड़ा के कारण जीना नहीं छोड़ते। वे जीवन को हमसे ज्यादा सकारात्मक ढंग से सोचते हैं। ''जब दोस्त मुझसे अपनी बात कर रहा था। तब भीतर से हिन्दी में गीत गुनगुनाने की आवाज आई। मैंने उसे सुना और दोस्त से कहा, ''तू सच कह रहा है। ये लोग हमसे ज्यादा सकारात्मक सोचते हैं। वैसे यह मधुर आवाज उन्हीं मैडम की हैं ना जो अभी-अभी यहाँ से गुजर कर गई हैं।'' दोस्त ने हामी भरते हुए कहा ''हाँ, यह वहीं है।'' और उन मैडम का नाम लेते हुए उन्हें बताया कि मैंने उनकी तारीफ की है। वह बाहर आई और उसने मुझे शुक्रिया कहा। दोस्त ने मेरा उनसे परिचय करवाया। मैंने उनकी तारीफ करते हुए कहा, ''आप की आवजा और हिन्दी बहुत अच्छी है, और आप को पता है कि ईश्वर ने आप को आवाज के साथ सुन्दरता भी दी हैं।'' वह शरमा गई और शुक्रिया करते हुए भीतर चली गई।

(4)

हम बहुत समय तक अतीत और वर्तमान की बातें करते रहे। बातों-बातों में हमारे तहसील किनवट के एक कॉलेज मित्र राकेश का विषय निकला था। राकेश कक्षा में सबसे अव्वल छात्र था। वह अच्छा भाषण करता था। दोस्तों का दोस्त था और दुश्मनी भी जमकर करता था। वास्तव में वह हर काम जमकर करता था। वह बिनधास्त लड़का था। हमने किनवट के सरस्वती विद्या मन्दिर महाविद्यालय से

बी.ए की पढ़ाई पूरी की थी। अगली पढ़ाई जिला नांदेड के जानेमाने कॉलेज पीपल्स कॉलेज से पूरी की थी।वह यहाँ भी टॉपर रहा था। जल्द ही वह अपने टेलेंट के दम पर जिला औरंगाबाद के एस.बी. कॉलेज पर अध्यापक नियुक्त हुआ था। पर एक दिन डॉक्टर ने उसे कह दिया यदि इसके बाद पढ़ाई करोगे तो जो भी आँखों की रोशनी है, वह भी जाती रहेगी। उसे कलेजे पर पत्थर रखना पड़ा था। मजबूर हो कर वह अपने गाँव लौट आया था। शिक्षा के क्षेत्र में एक अच्छा अध्यापक आते-आते चला गया। क्योंकि वह आँखों से अंशतः ही देख पा रहा था। ऐसा लगता था कि ईश्वर ने उसके साथ बहुत बड़ा मजाक किया है। पर वह हार मानने वालों में कहाँ था। उसने अपनी पुस्तैनी खेती सम्हाल ली थी। बाकी समय घर पर राशन की दुकान चलाता था। वह स्वाभिमानी था। आज भी उसके सामने सामान्य लोग आपाहिज से लगते थे। जब हम पुराने यार-दोस्तों की बातों में खोये थे। तब एक पाँच साल का मासूम लड़का हमारे सामने आया और अपनी चड्ढी जल्दी-जल्दी उतारने लगा। जैसे ही हमारी नजर उस पर पड़ी तब दोस्त ने उसे कहा, ''अरे रोहन बेटा तू यहाँ क्या कर रहा रहा है?'' उसने तोतली जबान में कहा, ''मुझे सु सु करनी है।''

''अरे बेटा, यहाँ बाथरूम नहीं हैं। बाथरूम उधर है।

''ये बाथलूम नहीं है। मुझे लगा यही बाथलूम है।'' वह मुस्कुराने लगा था। और वह सीढ़ियों के नीचे बने बाथरूम की ओर चला गया। दोस्त ने बताया, ''उसके माँ-बाप नहीं हैं। वे एक एक्सिडेंट में चल बसे...। और उसे यहाँ किसी ने लाकर छोड़ा है। तब से वह यहीं रहता है। उसे माँ-बाप क्या होते हैं, पता नहीं। यही स्कूल उसका घर है और माता-पिता भी।'' कुछ समय के लिए मैं भावनिक हो गया था। उसकी मासूमियत को देख दुःख हुआ। इस उम्र में उसके माँ-बाप चल बसे। जिस उम्र में माँ-बाप के प्यार की आवश्यकता होती है। वह नेत्रहीन था।

समय बहुत हो रहा था। मैंने दोस्त से कहा, ''यार बहुत समय हो गया है। अब मुझे घर चलना चाहिए। घर पर मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे।'' वह बेहद आग्रह कर रहा था कि मैं उसके पास रुकूँ पर घर से निकले हुए पंछी को आखिर शाम घर लौटना ही पड़ता हैं। ''मैंने उससे कहा एक बार वायलिन पर मधुर संगीत हो जाये ...तो मैं चलूँ....।'' उसने वायलिन उठाई, एक हाथ में बो पकड़ा और दूसरे हाथ से वायलिन के तारों पर संगीत सृजन के लिए तैयार हो गया। हम फिर से खो गये ......मैं सोचने लगा दोस्त, राकेश, वह नेत्रहीन सुन्दर लड़की, वह मासूम लड़का।

◆

8

मेरी भैंस को डंडा क्यों मारा ?

"अधमी से तात्पर्य निकट, जो आत्मा के समीप जाने का मार्ग हो वह अध्यात्म।" वे सेमिनार कक्ष के द्वार के बाहर खड़े योगेश्वरी जी का अध्यात्म और विज्ञान पर आयोजित व्यख्यान सुन रहे थे। महाविद्यालय का सेमिनार कक्ष छात्रों और अध्यापकों से खचा-खच भरा हुआ था। जो लोग बैठ न पाए थे वे खड़े होकर ही व्याख्यान का लाभ उठा रहे थे। आज के परिवेश में छात्रों का ऐसे कार्यक्रमों के लिए इतना प्रतिसाद अल्प ही दिखाई देता है। वे द्वार पर खड़े-खड़े सुन रहे थे। क्योंकि उन्हें बैठने के लिए जगह नहीं मिली थी। अब तो बाहर छात्रों और अध्यापकों की भीड़ उमड़ रही थी। वहाँ खड़े रहना भी मुश्किल हो रहा था। वे लगातार एक घंटे तक खड़े हो सुनते रहे। जब उनकी ज्ञान वाणी का प्रवाह अंतिम पड़ाव पर आया, तब वे वहाँ से ग्रन्थालय में स्थित सेमिनार कक्ष से बाहर आहाते में आकर खड़े हो गये।

अध्यापक यादव, राजपूत और प्रभात जी जब आपस में बाते कर रहे थे। तब प्रभात जी जो प्रसिद्ध मराठी साहित्यकार थे। उन्होंने हाल ही में बने हिन्दी के विभागाध्यक्ष राजपूत जी से पुराने विभागाध्यक्ष के बारे में पूछा था। "राजपूत जी, क्या आप रामेकर जी को जानते हैं? वे आपके पूर्व विभागाध्यक्ष थे।" इस पर राजपूत जी ने सहज कहा था। "जी सर, उनका नाम तो बहुत सुना है। पर उनसे कभी वास्तविक रूप में भेंट नहीं हुई।" जोर देते हुए प्रभात जी ने कहा था- "वे तो बहुत बड़ी हस्ती हैं। आप उनसे नहीं मिले तो क्या मिले? वे हिन्दी के प्रकांड पंडित हैं। फिर भी सीधा-सरल स्वभाव है। आपको तो उनसे जरूर मिलना ही चाहिए।" यादव और राजपूत जी ने उनसे मिलने की जिज्ञासा प्रकट की थी। इस पर प्रभात सर ने कहा था। "हम एक दिन उनसे जरूर मिलने जायेंगे।"

पर राजपूत सर कहाँ मानने वालो में थे। अपनी चिर-परिचित मीठी जबान वाली शैली में कहा- "एक दिन क्यों आज ही चलते हैं। मैं तो कहता हूँ अब ही चलते हैं। कल करे सो आज, आज करे सो अब। पल में प्रलय हो जायेगा, बहुरि काज करोगे कब।।" प्रभात जी ने भी हमारी उत्सुकता, जिज्ञासा, मिलने की इच्छा को देखकर मुहावरी लहजे में कहा था- "नेकी और पूछ-पूछ, हाथ कंगन को आस ही क्या? चलो चलते हैं।"

प्रभाकर जी अपनी स्कूटर पर सवार हो गये। वे पथ प्रदर्शक बने हुए थे। वे आगे आगे और यादव एवं राजपूत, राजपूत के दुपय्या यन्त्र पर पीछे-पीछे हो लिए थे।

वे महाविद्यालय से वि. आई. पी. रोड होते हुए फुले मार्केट पहुँचे थे। और यहाँ दमकल के गाड़ियों के रुकने के स्थान पर जाकर ही उन्होंने आधुनिक घुड़सवारी से अल्प विराम लिया था। दमकल की गाड़ियों के रुकने का स्थान बिल्कुल उनके घर के सामने ही था। जाते समय वे बेहद प्रसन्न हो रहे थे कि आज हमें इतने बड़े व्यक्ति से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हो रहा है। यादव भी महाविद्यालय में विगत ग्याहर वर्षों से अध्यापन रत था। पर कभी उनसे मिलने का योग नहीं आया था। यादव मन ही मन सोंच रहा था कि, "मैं कैसा आभागा हूँ कि, एक ज्ञानी व्यक्ति के सानिध्य, परिचय से अछूता रहा। मैंने उनके कस्तूरी वाले महक को महसूस कर ही नहीं पाया।" "कस्तूरी कुंडल बसई, मृग ढूँढ़े बन माही। ऐसे घट-घट राम हैं, दुनिया देखे नहीं।" सच में ही अब तक यादव उनसे बहुत कुछ सीख सकता था। पर खैर देर आये दुरुस्त आये। सुबह का भूला, शाम को लौट आये तो उसे भूला नहीं कहते। उनका मकान पुराने ढंग का था। देखकर ऐसा लगा वह पचास या साठ साल पहले बना हो। सामने से मोटर बड़ा था, जिसका प्रयोग अब लगभग न के समान था। सटकर उनकी इलेक्ट्रोनिक की दुकान थी, जो सबसे छोटे बेटे के लिए बनी थी। न जाने वह भी कितने समय से बंद थी। दुकान के ऊपर एक बोर्ड लगा हुआ था। जिस पर लिखा हुआ था 'हिन्दी विश्व' शायद सर कोई पत्रिका चलाया करते थे। वे शब्द अब धुन्धले नजर आने लगे थे। उन शब्दों का रंग कई स्थानों से उड़ा हुआ था। शायद सर के उम्र के साथ उसकी भी उम्र हो चली थी। दुकान से लगकर एक गेट था, जिसके द्वारा मकान तक पहुँचा जा सकता है। प्रभाकर सर ने गेट खोला और हम उनके पीछे-पीछे हो लिए थे। गेट की आवाज सुनकर, उस पुराने मकान से एक वृद्ध स्त्री बाहर आई। उन्हें देखकर प्रभाकर जी ने पूछा, "पंडित जी घर पर हैं क्या?" इस पर उस वृद्ध स्त्री ने मजबूत आवाज में हामी भरते हुए कहा था, "हाँ, हैं ना, अभी बुलाती हूँ।" कहकर घर में चली गई थी। हम वहीं गेट के पास खड़े उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। गेट के पास बादाम और रसबेरी का पेड़ लगाया हुआ था। लगता था कि पेड़ बहुत पुराने हैं। जब तक सर आते हैं, हम पेड़ों को लेकर आपस में चर्चा करने लगे थे।" यह शैतुत का पेड़ है। प्रभाकर जी जिज्ञासावश या बालचेष्टा वश मुझसे पूछने लगे थे। "यह शैतुत क्या है? इसे खाया जाता है क्या?" इस पर यादव ने कहा था, "सर जी, इसका फल लाल या काला होता है, जब काला होता है तो वह बहुत मीठा लगता है।" प्रभाकर जी मुस्कुराने लगे थे। वे भी समझ गये थे कि हम भी आपस में खिचाई कर रहे हैं। प्रभाकर जी बता रहे थे कि, "रामेकर जी किसी की बात नहीं सुनते। वे अपने ही मन की करते हैं। कुछ सालों पहले की बात

है, वे पेड़ पर चढ़ गये और टहनिया काटने लगे थे। काटते-काटते उनका पैर फिसल गया था। उन्हें गंभीर रूप से चोट आई थी। दोस्तों की सहायता और मंत्री महोदय की सहायता से अस्पताल का सारा खर्चा उठाया गया था।'' हम आपस में बात कर ही रहे थे कि लोहे के तिकोनी छड़ों का सहारा लेते हुए एक वृद्ध सामने आया। उन्हें देखते हुए प्रभाकर जी ने कहा था, ''कैसे हैं पंडित जी?'' पंडित जी कहते ही हम समझ गये थे कि यही वह व्यक्ति है जिससे हम मिलने आये थे। रामेकर जी ने थोड़ा भी समय न गवांते हुए मजबूत और मोटे आवाज में कहा था, ''आओ प्रभाकर जी आओ।'' अब उनकी उम्र अस्सी की हो गई थी। इस उम्र में ऐसी स्मरण शक्ति हम चकित रह गये थे। प्रभाकर जी ने हमारा परिचय करवा दिया था। कमाल था कि हमारे नाम उन्हें पहले से ही पता थे। हमें और उन्हें दोनों को प्रसन्नता का अनुभव हो रहा था। 'चलिए भीतर बैठिये....।'' कहते हुए हमें उन्होंने भीतर बैठने के लिए कहा था। इस पर प्रभाकर जी ने कहा था, ''हम आप की तबियत पूछने के लिए आये थे। और इन दोनों को आपसे मिलाने के लिए लाये हैं। अब हम चलते हैं फिर कभी आएंगे। ''पर रामेकर सुनने के लिए तैयार नहीं थे। वे लगातार कह रहे थे।'' ''चलिए भीतर चलिए, पानी पीजिये, चाय लीजिये। भाई हमें तो छः माह से जेल हो गई है। सो अब घर पर ही पड़े रहते हैं। ''वस्तुयें आंगन में बिखरी पड़ी हुई थी। वस्तुएँ, चीजें बहुत पुरानी होकर, लगभग भंगार बन चुकी थी। उन्हीं वस्तुओं में एक पुरानी सायकाल पड़ी हुई थी। उस ओर इशारा करते हुए रामेकर जी ने कहा था, ''इसी सायकल से मैं गिरा था। पैर की कमर की हड्डी टूट गई। दो महीने केवल पानी पीता रहा था। डॉक्टर के कहने पर अब घर में ही चल फिर रहा हूँ। पिछले साठ साल से इसी साईकिल का प्रयोग करता आया हूँ, हर काम के लिए। कॉलेज में भी इसी साईकिल से आता जाता था।'' उनकी बातों से साइकिल से उनका विशेष अनुराग प्रकट हो रहा था। पर यादव यह सोच कर हैरान था कि इस उम्र में सर साईकिल चलाते हैं। प्रभाकर सर सच ही कहते थे कि, ''रामेकर जी से आप नहीं मिले तो क्या मिले।'' वे इस उम्र में भी किराना माल, सब्जियाँ आदि इसी साइकिल से लाया करते थे। यह उनकी तंदुरुस्ती का राज था या मज़बूरी यादव समझ नहीं पा रहा था।

उनके पुनः पुनः आग्रह करने से वे बरबस उनके पीछे हो लिए थे। पहला कमरा दो भागों में विभाजित था। बायीं ओर अनाज रखने के लिए और दाई ओर का कमरा रसोई के लिए था। उस कमरे से होते हुए वे दायें वाले बेडरूम में गये थे। कमरे कुछ साफ सुथरे तो थे पर कई चीजें बिखरी हुई पड़ी थी। भीतर पुरानी शैली का पलंग था। जहाँ सर आराम करते थे। बैठने के लिए कोई कुर्सी नहीं थी। रामेकर जी ने अपनी धर्मपत्नी को आवाज लगाते हुए कहा था। ''राजेश की माँ दो कुर्सियाँ

ले आना।'' जब तक यादव उठकर उनकी सहायता करता, तब तक स्फूर्ति से उन्होंने कुर्सियाँ लाकर रख भी दी थी। उस पर दोनों बैठ गये थे। एक कुर्सी कम होने के कारण प्रभाकर जी ढके हुए चद्दर, दरियों पर बैठ गये थे। धर्मपत्नी को जाते-जाते पंखा चलाने के लिए कहा था। इस पर तेज गति से उन्होंने पंखे का बटन चला दिया था। राजपूत सर को ठण्ड महसूस होने के कारण, पंखे का बटन बाद में बंद कर दिया गया था। रामेकर जी ने अपनी पत्नी से चाय-नाश्ता बनाने के लिए कहा, पर वे उन्हें परेशान नहीं करना चाहते थे। घर में वे दो ही जीव थे। एक बेटा उनके पास तो रहता था, पर फिलहाल वह उनके अनुसार कहीं शादी में गया हुआ था। उन्हें तीन बेटे थे। राजेश सबसे छोटा था। सबका विवाह उन्होंने बड़ी धूम-धाम से करवाया था। बड़ा बेटा पूना में तो दूसरा वर्धा में नौकरी करता था। दोनों ही बहुयें उच्च विद्या विभूषित होने से वे भी नौकरी पर थे। राजेश की पत्नी के संदर्भ में तब तक कुछ पता नहीं चला था। पर इतना था कि यादव को वे उस दिन अकेले नजर आ रहे थे। मानों इस उम्र में भी एक-दूसरे के सहारे जीवन बिता रहे हों।

चाय-नाश्ते के लिए इंकार करने के बावजूद भी रामेकर की धर्मपत्नी ने उनके लिए तिल के लड्डू लाये थे। तिल के लड्डू बड़े लजीज बन पड़े थे। सबने एक-एक लड्डू लिया था। लड्डू खाने से पहले ही मुँह में पानी छूटना स्वाभाविक ही था। खाकर उन्हें आनंद और संतुष्टि का अनुभव हो रहा था। शायद इसीलिए कि उसमें अपनेपन का प्यार था। उनके आने की खुशी थी। रामेकर को अवकाश पाकर अठारह साल बीत गये थे। अवकाश प्राप्त इन्सान अक्सर उपेक्षा, अकेलापन, प्रताड़ना, आर्थिक अभाव आदि से गुजरता हुआ दिखाई देता है। यदि ऐसे में उन्हें कोई मिलने चला आये तो उनकी खुशी का कोई ठिकाना नहीं रहता। उन्हें देखकर इसी बात की अनुभूति हो रही थी। उनकी धर्मपत्नी की इस उम्र में कार्य करने की स्फूर्ति जवान स्त्रियों को भी शर्मिंदा करने वाली थी। यादव मन ही मन चाह रहा था कि, ''ईश्वर से सदैव यही प्रार्थना रहेगी कि जबतक वे जीवित रहें, तबतक उनका जीवन सुविधापूर्ण और सुखी बीते।''

बहुत दिनों के बाद जब कोई अकेले पन के दौर से गुजर रहे इन्सान को मिलने के लिए आता है, तो वह इन्सान मिलने आने वाले से ढेर सारी बातें करना चाहता है। रामेकर जी भी कुछ ऐसे ही करते नजर आ रहे थे। उनके आवाज में बुलंदी थी और प्रवाह भी। आवाज से लगता था कि बुढ़ापा अभी कोसो दूर है। वे घर आये मेहमानों से कई बातें करना चाह रहे थे।, ''मैंने सारा भारत भ्रमण किया है। कई सभा, सम्मेलनों, संगोष्ठियों में मैं जाया करता था। ये देखो तस्वीरे, जिनमें मेरी पुरानी यादे बसी हैं।'' उनके बातों के खजानों से लग रहा था कि वे सच में ही बहुत बड़े विद्वान हैं। सुनने वालों की तल्लीनता देखकर वे विभिन्न विषयों पर बातें करने लगे थे। आज

की शिक्षा पद्धतियों को लेकर तथा आज के अध्यापकों के पढ़ाने के ढंग को लेकर वे दुखी नजर आ रहे थे। वे कह रहे थे कि, "आज के अध्यापक क्या खाक पढ़ाते हैं, छात्रों को। पढ़ाने के नाम पर नोट्स लिखकर देते हैं सीधे-सीधे। इससे छात्रों का क्या विकास होगा? मैं जब भी कक्षा पर जाता था। और जब पढ़ाता था, तब छात्र बड़े गौर से सुनते थे। जब उन्हें नोट्स की ही आवश्यकता होती तो पच्चीसों किताबें पढ़कर नोट्स बनाता था। और सायक्लोकोपी बनाकर कक्षा के अन्त में छात्रों को बाँट देता था। मैं टाइम पास बिल्कुल नहीं करता था। मैं जब नांदेड के नामी कॉलेज के मंच से बात किया करता था, तब नरहर कुंरुदकर भी मुझे सुनना पसन्द करते थे। आपको मुझसे किसी भी विषय पर बात करनी हो तो मुझसे कभी भी कर सकते हो। मैं अभी इसी वक्त भाषा विज्ञान, काव्यशास्त्र पर भी बोल सकता हूँ। और अच्छा पढ़ाता भी था। मैंने केशवदास की 'रामचन्द्रिका', 'रसिकप्रिया' जैसी रचनाओं पर बहुत विस्तार से लिखा है। जिसे उस समय किसी की हाथ लगाने की हिम्मत नहीं होती थी। मैंने 'माधव जुलियन और हरिवंशराय बच्चन पर तुलनात्मक लिखा है।"

रामेकर जी एक रस होकर सुना रहे थे। और वे बड़े गौर से कान लगाकर सुन रहे थे। ताकि कोई शब्द छूट न जाये। उनके पास बताने के लिए बहुत कुछ था। उनका मस्तिष्क ज्ञान का भंडार था। मनो वे किसी शिष्य की प्रतीक्षा कर रहे हों, जिसे वे अपना ज्ञानदान कर सकें। अपना सबकुछ बता सके। उनके ज्ञान से प्रभावित होकर वे दिल ही दिल में शिष्य बन चुके थे। दोनों ही पक्ष सुखद उल्हास से गुजर रहे थे। रामेकर के रूप में उन्हें गुरु मिल गये थे और वे उनके शिष्य बन गये थे। उन्होंने उनके सामने ज्ञान का, अनुभव का यादों का खजाना खोल दिया था। चाहे जितना खजाना लूटलो। इस लूट को कोई भी नहीं रोक सकता था। जितना लूटोगे उतना ही यह खजाना बढ़ने वाला था। वे लगातार उनके अनुभव, ज्ञान और यादों का खजाना लुटा रहे थे।

रामेकर जी अपनी यादों में ऐसे खो गये थे कि अपनी जिन्दगी के एक-एक हिस्से को बड़े चाव से सुना रहे थे। वे अपने अध्यापन काल का एक हिस्सा सुनाते हुए कह रहे थे, "मैंने उमर खय्याम की रुबाइयों का, माधव जुलियन, हरिवंश राय बच्चन की मधुशाला के पदों का तीन-तीन भाषाओं में अपने हाथों से रंगीन पोस्टर बनाये और उनकी प्रदर्शनी भी रखी थी। यह प्रदर्शन छात्रों और अध्यापकों को खूब पसंद आयी थी। मैं अक्सर छात्रों के लिए नये-नये प्रयोग करता था। मैं एक-एक रुबाइयों पर, पदों पर घंटो बोल सकता हूँ।" उन्होंने कई विषयों पर समीक्षात्मक किताबें लिखी थी। पर आर्थिक अभावों के कारण उसे प्रकाशित नहीं कर पाए थे। अपने समय में उन्होंने पचासों कविताओं का सृजन किया था। उनके कविताओं में विषय विभिन्न समस्याओं पर हुआ करते थे। तो कहीं-कहीं हास्य-व्यंग्य की

कविताएँ भी उन्होंने लिखी थी। यादव ने जिज्ञासा वश उनसे पूछा था, "सर आप ने कई कविताएँ लिखी हैं। क्या आप की एखाद कविता हमें सुनने को मिल सकती हैं? इस अवस्था में आप को अतिथि वक्ता के रूप में हम कॉलेज में बुला भी नहीं सकते।" उनके लिए तो बस मौका ही चाहिए था कि उनकी कविता के लिए कोई रसिक श्रोता मिल जाये। उन्होंने बताया था कि अपने समय में वे कई कवितायें लिख चुके थे। याद करते हुए उन्होंने एक हास्य-व्यंग्यात्मक शैली में लिखी कुछ पंक्तियों को हमारे सम्मुख रखा था।

मेरी भैंस को डंडा क्यों मारा?
तेरे बाप का क्या जाता है?
लक्स से वह रोज नहाती है।
भैंस का रंग है काला फिर भी
सफेद दूध वह देती है।

काव्यरस से ओतप्रोत बेहद प्रसन्न अवस्था में वे कविताओं की पंक्तियाँ सुना रहे थे। यादव और उनके साथियों के मुखमंडल पर हास्य रेखा विराजमान हो गई थी। उन्होंने बताया था कि यह कविता लगभग दो सौ पंक्तियों में लिखी थी। अपने समय में यह कविता आल इंडिया लेवल पर बड़ी चाव से सुनी जाती थी। श्रोता हर पंक्तियों पर मुस्कुरा देते थे। श्रोताओं के दाद से उनका आत्मविश्वास दुगना-चौगुना एवं काव्याभिव्यक्ति और भी प्रबल होती जाती थी। उनके द्वारा लिखी गई कवितायें आज भी पुरानी डायरी में सुरक्षित थीं। जिनका प्रकाशन अबतक नहीं हुआ था। जिस कारण काव्य रसज्ञ उनकी कविताओं से महरूम थे। नांदेड की धरती का कवि आज लगभग गुमनामी की जिन्दगी जीता हुआ नजर आ रहा था।

'मेरी भैंस को डंडा क्यों मारा?' के जन्म के सम्बन्ध में वे हमें बता रहे थे कि "हमारे मित्र कॉलेज के प्राचार्य थे। वे वहीं कॉलेज में अपने परिवार के साथ रहा करते थे। उन्होंने भैंसे भी पाल रखी थीं। ये भैंसे दूसरों का चारा खा जाया करती थी। तब लोग उनके भैंसों को डंडा मारा करते थे। स्नेह सम्मेलन में इस पर फिश पौंड भी पढ़ा गया था। उस समय मैंने यह कविता लिखी थी।" पैसों के आभाव में किताबें प्रकाशित न करने का दुःख भी उन्हें था। वे इस दुःख को प्रकट करते हुए कह रहे थे। "मुझे आज भी दस हजार पेंशन की तनखाह मिलती है। इसमें ही घर का सारा खर्च चलता है। ऊपर से मेरी बीमारी का खर्च भी। बताओ इसमें क्या होता हैं?"

♦

9
सुलभ शौचालय...

रोज की तरह ड्राइवर आज भी शहर की सड़कों से तेज गति से गाड़ी चला रहा था। आशीष दस लाख की कार में बैठा ए.सी.का आनंद उठाते हुए मोबाइल पर बिजनस डील कर रहा था। उसे घर जल्दी पहुँचना था। उसने अपनी पुत्री से किया हुआ वादा-

"पापा घर समय पर आना।"

"बेबो आज शार्प टाइम पर आऊँगा।"

कभी निभा नहीं पाया था। शायद उस दिन वह निभाने की कोशिश कर रहा था। कार तेज गति से अपने आलीशन बंगले की ओर पहुँचने के लिए व्याकुल थी। वह सड़कों से ऐसे गुजर रही थी मानो उसे पंख लग गये हो। और वह आसमान में आबाद गति से उड़ रही हो। अचानक पचास-पचपन साल का क्षीण, मलिन व्यक्ति गाड़ी के सामने आ गया था।

"बाप रे.....।"

पर भाग्य से कोई विपरीत घटना होते-होते रह गई थी। गाड़ी का यूँ अचानक रुकने और ड्राइवर के ऐसे चिल्लाने से, आशीष घबराई आवाज से पूछने लगा था।

"क्या हुआ उमेश, इतनी जोर से ब्रक क्यों लगाया?"

"साहब कोई गाड़ी के सामने आ गया है।" कापते हुए स्वर में उसने कहा था।

आशीष ने ए.सी. में रुमाल से पसीना पोछते हुए कहा था।

"अरे जल्दी से उतर कर देख, बचा या ....।" अचानक आशीष का शरीर पसीने से तरबतर हो गया था। वह ठन्डे में गर्मी महसूस कर रहा था। ड्राइवर ने जब यह कहा था कि,

"नहीं-नहीं साहब कुछ नहीं हुआ, बस थोड़े से बच गया। मैं समय पर ब्रेक न लगाता तो बहुत बड़ा अनर्थ हो जाता।" आशीष क्रोध में भुनभुनाने लगा था।

"सालों को मरने के लिए हमारी ही गाड़ियाँ मिलती हैं। सड़क पर चल रहे हैं...... जरा इधर-उधर देखकर चले.... पर ना.... ऐसे चलते हैं.... जैसे यह सारी सड़क इनके बाप की है।"

गाड़ी का दरवाजा खोलकर आशीष बाहर आया और उस आदमी को देखकर खरी-खोटी सुनाने लगा।

"अबे अँधा है क्या? दिखाई नहीं देता। इतनी बड़ी गाड़ी आ रही है। या तेरा कोई प्लान था। रुपये हड़पने का।"

वह क्षीण मलिन व्यक्ति अपने आप को संवारते हुए आशीष की ओर देखता सुनता उठ खड़ा हुआ। कोई भय, क्रोध, पीड़ा को प्रकट किये बिना वह धीरे-धीरे मुस्कुराने लगा था। उसकी मुस्कराहट को देखकर आशीष का क्रोध धीरे-धीरे कम होने लगा था। उसने अहसास किया कि यह मुस्कराहट वह इससे पहले भी देख चुका है। जब वह उसे गौर से देखने लगा तो पता चला कि यह तो उसके स्कूल का मित्र अजय है।

"अज यह तू ही है ना?"

इस पर अर्ध प्रसन्नता के साथ अजय ने कहा था।

"हाँ, आशीष यह मैं ही हूँ।"

तब आशीष ने उसकी दशा को देखकर बहुत ही बुझे और दुखी स्वर में कहा-

"यार, अजू यह क्या हालत बना रखी है। और तू मुझे आशीष क्यों बुला रहा है। आशु बुला ना यार ! भूल गया क्या अपनी दोस्ती को?"

ऐसे कहते हुए आशीष ने अपने निकटतम दोस्त अजय को गले लगा लिया था। उनकी मुलाकात बहुत सालों बाद हो रही थी। आशीष ने यह तक नहीं सोचा कि अजय के मलिन कपड़ों से उसके महंगे कपड़े खराब हो जायेंगे। उसने उसे दिल से गले लगाया था। सो दाग लगने का सवाल ही नहीं उठता था। क्योंकि दोनों का रिश्ता पवित्र दोस्ती का रिश्ता था। जिसमें इर्षा, लोभ, मोह, जलन आदि के लिए कोई स्थान नहीं था। स्थान था तो सिर्फ निश्छल प्रेम का, अटूट बंधन का। उस मिलन को देखकर ऐसे लग रहा था। मानो श्री कृष्ण और सुदामा की भेंट हो रही है। और सारा संसार उसका साक्षी बन रहा है। अजय ने आशीष के बुरे वक्त में सहायता की थी। वह जो भी खाना घर से लाता उसमें से उसके लिए आधा हिस्सा देता था। कभी-कभार स्वयं भूखा रहते हुए आशीष को पेट की आग शांत करते देख उसे बेहद प्रसन्नता होती थी। अजय के घर के हालत ठीक नहीं थे। वह अस्पृश्य समझी जाने वाली जाति से था। पर मेहनत मजदूरी से उनका परिवार दो जून की रोटी पाता था।

"अजू, चलो मेरे साथ गाड़ी में बैठो।" हर्ष से कहा था।

पर अजय ने इंकार में गर्दन हिलाते हुए कहा था।

"नहीं आशू, मैं तेरे साथ इस गाड़ी में नहीं आ सकता। मेरे मलिन वस्त्रों से तेरी गाड़ी खराब हो जाएगी।"

आशीष अजय की बात सुनकर मुसकुरा रहा था। इस पर उसने समझाते हुए कहा था।

"अजू तेरे लिए ऐसी एक गाड़ी क्या हजार गाड़ियाँ कुर्बान कर दूँगा।"

वह ना-ना करता रहा पर आशीष भी कहाँ मानने वालो में से था। उसने उसका हाथ पकड़ कर जबरन उसे भीतर बैठाया था। अजू अपनी पूरी जिन्दगी में ऐसी गाड़ी में नहीं बैठा था। उसने सपने में भी नहीं सोचा था कि वह ऐसी गाड़ी में बैठेगा। भीतर नरमा-नरम मखमली सीट और ठंडी-ठंडी हवा। जीवन भर अभावों, गरीबी में जीने वाला अजू उस दिन क्षणिक क्यों न हो आनंद का अनुभव कर रहा था। वह बैठे-बैठे सोंच रहा था कि "काश मेरे बच्चे और बीवी भी मेरे साथ होते। तो कितना अच्छा होता। बच्चे तो खुशी से उछल कूद करते। बीवी तो शर्मा जाती कि इतनी बड़ी गाड़ी में वह बैठी है। वहाँ तो कितनी गर्मी होती हैं, यहाँ तो गर्मी में भी ठण्ड लग रहीं है। वह तो यहाँ गरम कंबल ओढ़े गुप्प बैठ जाती। या फिर गाड़ी के दरवाजे पर हाथ टेक कर सीना ताने बाहर वालों की देखती। और कहीं गाड़ी सिग्नल पर रुक जाएँ तो भिखारियों के भगोनों में छन्न से सिक्का उछालती। और कहती जा बेटा ऐश कर....।"

धीमी कार ने अब रफ्तार पकड़ ली थी। जैसे अजू और आशीष के मन में उठने वाले विचारों, सवालों-जवाबों ने रफ्तार पकड़ ली थी। अजू को सोंचता और खामोश बैठा देख आशीष ने कहा था,

"क्या हुआ अजू, किस सोच में डूब गए हो? मुझ से बात नहीं करोगे क्या?"

अचानक परिकल्पना की दुनिया से अजय बाहर आ गया था। "नहीं-नहीं कुछ नहीं, पहली बार गाड़ी में बैठा होना तो कुछ अजीब सा लग रहा है।"

कार हवा से बाते करते हुए रास्ता काट रही थी। इधर अजय और आशीष आपस में बाते कर रहे थे। छूटे हुऐ पलों को यादों के एल्बम से निकाल-निकाल कर सुख और दुखों के पल को जिया जा रहा था। आशीष बता रहा था कि किस तरह से संघर्ष करते हुए आज वह शहर का जाना-माना बिजनेस मैन बन गया था। उसके कई टू विलर और थ्री विलर के शोरूम हैं। जिसने उसकी कमाई रोजाना लाखों रुपयों में थी। उसने बताया था कि उसने नसीब से कभी हार नहीं मानी। बार-बार पराजित होने के बावजूद भी वह फिर से जोश के साथ उठता और आगे बढ़ता था।

उसने बताया कि, "वह जो ऊपरवाला है ना बड़ी कठिन परीक्षा लेता हैं। पर जो मेहनत करने से हार नहीं मानता। बार-बार गिर फिर उठता है। वह उसका जरूर साथ देता है। साथ भी ऐसे देता है कि वह हमेशा-हमेशा के लिए अपना डेरा उसके घर में बसा लेता है। "बातों-बातों में आशीष का आलीशान बंगला कब आया पता ही नहीं चला था। बंगले के बाहर भव्य-दिव्य गेट और वर्दी पहने एक वाचमैन खड़ा था। गेट खोलते हुए उसने आशीष को जोरदार सलूट किया। भीतर बंगले तक पहुँचने तक एक लम्बी सड़क थी। सड़क के दोनों किनारों पर हरे-भरे पेड़, रंग-बिरंगे फूल, मानो सदैव स्वागत के लिए वे अपने मालिक के लिए तत्पर खड़े हों। जैसे-जैसे गाड़ी

भीतर जा रही थी वैसे-वैसे बगीचा, पानी का फवारा और फिर आशीष का राजमहल देखकर अजय की आँखे चौंधिया गई थी। ऐसे महल के बारे में तो वह सपनों में भी नहीं सोच सकता था। आज वह प्रत्यक्ष देख रहा था। उसमें कदम रखने वाला था। आशीष उस राजमहल का राजा था। उसने आने पर कई नौकर-चाकर इकट्ठा हो गए थे। अजय का परिचय करवाया गया था। अजय शरमा रहा था कि यहाँ के नौकर के कपड़े भी मुझसे कई गुना अच्छे और साफ सुथरे हैं। और मैं फटीचर, गन्दा, मैला-कुचैला दरिद्र इन्सान। इनके सामने भिखारियों सा लग रहा हूँ। अजय का स्वागत गरमा-गरम चाय नाश्ते के साथ हुआ था। बाथरूम में वह फ्रेश हुआ। बाथरूम इतना बड़ा था कि उसमें उस जैसे दस-बारह लोग सो जाएँ। पानी हैं कि चौबिसों घंटे चलता रहता है। ठण्ड में गर्म पानी, गर्मियों में ठंडा पानी चाहे जैसे नहालो। कोई कुछ नहीं कहेगा। ना कोई झगड़ा, ना कोई खिटपिट। वह सोचने लगा था। उनके यहाँ तो आठ दिनों में एक बार पानी आता है। उसके लिए भी कितनी मारा-मरी होती हैं। टैंकर भी आता है, तो जिसके पास पाइप हैं। जो झट से ऊपर चढ़ सके हैं, उसे ज्यादा पानी मिलता है। औरते बेचारी कहाँ चढ़ सके हैं। पर अब औरते और मर्द कुछ नहीं सभी ऊपर चढ़ते हैं। पानी भरने के लिए जब पाइप टैंकर के होल में डालते हैं, तो ऐसे खुश हो जाते हैं कि जैसे कोई किला फते कर लिया हो। चूँ-चूँ, भो-भो की आवाजें। धक्कम-धक्की, गाली-गलोज, आधा नहाना तो वहीं हो जाता था। कुछ लोग तो टैंकर की प्रतीक्षा में टावेल लिए खड़े होते कि अब जी भर नहा लेंगे। और छोटे से घर में डिब्बे, बर्तन, ग्लासों में पानी भरकर रखा जाता था। क्योंकि अगली बार पानी कब मिलेगा पता नहीं। पानी के बर्तन से छोटा घर और भी छोटा हो जाता था। अजय आशीष के मेहमान नवाजी से बहुत खुश हुआ था। उसकी आँखें भाव-विभोर हो गई थी। जब सबकुछ हो गया था तब आशीष ने अजय से पूछा।

"अजू तू कहाँ रहता है? तू क्या करता है? अब तक कहाँ था?"

आदि कई प्रश्नों के उत्तर वह अजय से चाहता था। उसकी जिज्ञासा उसके मुख से निकलने वाले उत्तरों से क्षमित होने वाली थी।

अजय और आशीष बचपन के साथी थे। दोनों ने एक साथ पढ़ाई की थी। दोनों ने मैट्रिक की परीक्षाओं में अच्छी सफलता पाई थी। उस समय पिछड़े वर्ग का कोई दसवीं पास हो जाये तो बहुत बड़ी बात हुआ करती थी। आगे चलकर दोनों के मार्ग भिन्न-भिन्न हो गए थे। मैट्रिक पास होने से अच्छे घरों से रिश्ते आ रहे थे। अजय का विवाह एक सुन्दर, सुशील लड़की से हुआ था। विवाह के कुछ दिनों बाद उसका असली जिन्दगी से सामना होने वाला था। रोजी-रोटी का प्रश्न चिन्ह उनके सम्मुख मुँह बायें खड़ा था। वह नौकरी के लिए अपनी फटी हुई चप्पल को घिसता रहा था। पर चप्पल घिसने के आलावा और कुछ नहीं कर पाया था। उनका परिवार बड़ा और

संयुक्त था। कमाने वाला एक और खाने वाले सात-आठ थे। बड़ा भाई मेहनत-मजदूरी करता था। पर उसमें इन सबका पालन पोषण करना और बच्चों के भविष्य के लिए पूँजी इकट्ठा करना न हो पा रहा था। घर में रोज किसी न किसी बात पर कहा सुनी होने लगी थी। अजय भी जाति के अभिशाप और नसीब को कोसता आर्थिक विपन्न अवस्था से गुजर रहा था। एक ओर पिछड़ी जाति का दर्द, समाज की प्रताड़ना, उपेक्षा का वह शिकार था, तो दूसरी ओर नौकरी के आभाव में पैसों के लिए मोहताज बन गया था। आर्थिक दुरावस्था के कारण मजबूर होकर एक दिन उसके बड़े भाई ने उसे घर से निकाल दिया था। तब वह अपना गाँव छोड़कर पूना चला गया था। वहाँ वह भवन, इमारतें निर्माण के कार्य में गवंडी का काम करने लगा था। यहाँ रोटी, कपड़ा और मकान के राष्ट्रीय प्रश्न से वह जूझ रहा था। वह जहाँ काम करता था, उसका संसार वहीं राममान हो जाता था। देखते-देखते उसे छः संतान हुई। चार लड़कियाँ और दो लड़के। जब वह किराये पर झोपड़ी लेने में सफल हुआ तो उसने किराये पर एक झोपड़ी ली थी। अब वे दो और उनके छः संतान साथ में उस झोपड़े में रह रहे थे। एक तो तंग जगह और उस पर इतने लोग। दिन बीतते जा रहे थे। लड़कियाँ अब बड़ी हो रही थी। जैसे-जैसे लड़कियाँ बड़ी हो रही थी, वैसे-वैसे अजय के सामने उनके विवाह की चिंता की शिकन माथे पर हलकी और फिर गहरे रूप में उभर रही थी। जब विवाह के योग्य रकम जमा हो गई थी, तब दो लड़कियों का विवाह करवा दिया था। रुपयों के विवाह में खर्च हो जाने और दहेज में देने से अब वह ठनठन गोपाला हो गया था। उसे अब सबकुछ फिर से शुरू करना था। कई साल बीत गये वह अपने गाँव भी नहीं लौटा था। अब वह अपने गाँव लौट आया था। वहाँ भी वह ज्यादा दिन चैन से नहीं रहा पाया था। वह मजदूरी कर अपना और अपने परिवार का पालन पोषण कर ही रहा था। पर उसके सगे-सम्बन्धियों को यह कहाँ सुहाने वाला था। वह तो उनके आँखों की किरकिरी बन गया था। संबंधियों से आये दिन विवाद के चलते वह उकता चुका था। पर पेट का सवाल था। और चार-चार संतानों का भविष्य उसकी नजरों के सामने नाचने लगा था। पर वह परिस्थितियों से हार मान कर घर बैठने वालों में से न था। उसे पता था कि कुछ करने की इच्छा हो तो समय अपने आप कोई न कोई मार्ग अवश्य दिखायेगा। जहाँ चाह है वहाँ राह है। अजय का सादू बिड जिले के नव निर्मित हो रहे बिल्डिंग पर वाचमैन था। उसकी सहायता से वह वहाँ गया था। और उसे वहाँ भवन निर्माण के कार्य में गवंडी का काम मिल गया था। पर यहाँ भी पूना वाला ही प्रश्न चिन्ह उपस्थित हो रहा था। वैसे भी कम आय में किराएँ पर रूम मिलना कठिन कार्य ही था। उस पर पिछड़ी जाति का अभिशाप। अब तक उम्र के पचास-पचपन साल बीत गये थे। पर कुछ करने का, संकटों से मार्ग निकालने का जोश अब भी उसमें कायम था।

नियति कब कहाँ किसके साथ कौन सा खेल-खेलेगी पता नहीं। अमीर और भी अमीर बन जाता है, गरीब और भी गरीब तथा दरिद्र से बदतर बन जाता है। कोई सफलता, भौतिक सुख, बड़ी सरलता से पाता है, तो कोई आजीवन सुख की तलाश में अपनी उम्र को घटते हुए देखता है। जब आशीष ने अजय से अपना पता बताने के लिए कहा था। तब वह बहुत देर तक खामोश बैठा अपनी पुरानी जिन्दगी के थपेड़ों से भरे समन्दर में गोते लगाने लगा था। उसके आँखों ने बरसों से बंधे आंसुओं के बाँध को तोड़ दिया था। सबकुछ उसमें बह जाना चाहता था। वह खाली होना चाहता था, भीतर के उस असीम पीड़ा से। उस समय आँसू वही कार्य कर रहे थे। आशीष समझ गया था कि उसने उसकी कोई दुखती रग पर जाने अनजाने में हाथ रख दिया था। आशीष ने उससे पूछा।

''क्या हुआ अजू? मैंने कुछ गलत कह दिया क्या? या मुझ से कोई गलती हो गई?''

इस पर अजय ने कहा, ''नहीं दोस्त, गलत तूने कुछ पूछा ही नहीं, बल्कि सच मैं नहीं बता पा रहा हूँ।''

''सच कौन सा सच? जिज्ञासा से आशीष ने पूछा था।

तब सजल नैनों से अजय ने कहा था। ''मेरा पता जानना चाहते हो ना तुम, तो सुनो सुलभ शौचालय, खड़कपुरा, जिला......।''

◆

10
मेन सिजने सेवमान....

"युल्दुस, मेन सिजने सेवमान"

वह मुस्कुराहट रही थी, रमेश ने बड़े साहस के साथ उसे कहा था। प्रतिक्रिया रूप में उसकी वह सुन्दर, मोहक और आकर्षक हँसी ने उसे घायल कर दिया था। वे मिल तो नहीं सकते थे। गुजरने वाला हर पल उसके साथ अंतिम क्षणों में से था। उसे भुला पाना न रमेश के लिए संभव था और न उसके लिए। प्रेम तो क्षण में हो ही जाता है। उसे न भाषा की आवश्यकता होती है न जाति, धर्म और देश की। उनकी मुलाकात तो कुछ समय के लिए थी। समरकंद अब तक आ चुका था। जाते समय रमेश ने फिर से उसकी ओर देखा और,

'खायर'

कहते हुए निकला ही था कि उसने रमेश का नाम लेकर कहा

'मेन सिजने सेवमान'।

रमेश के लिए यह सुखद भी था और दुखद भी। सुखद इसलिए कि उसने रमेश को मन सिजने सेवमान कहा और दुखद इसलिए कि इसके बाद वे जिन्दगी में कभी न मिल पायेंगे।

जब वह फिल्मों में मेट्रो ट्रेन देखता तो उसकी यादें, मीठी बातें, उसके साथ बिताये हर पल और ताशकंद की भी याद आने लगती थी। उन्हें ताशकंद के स्टेशन पर सुबह आठ बजे तक पहुँचना था क्योंकि समरकंद के लिए उन्हें ले जाया जाने वाला था। वे ताशकंद के द पार्क तुरान होटल से निकल कर वोल्वो ए. सी. बस में बैठकर शहर के सौन्दर्य का आनंद लेते हुए स्टेशन के लिए निकल पड़े थे। हाथ में ट्रैवेल बैग, बैग पर पानी की बोतल को लटका दिया था। वे जहाँ जाने वाले थे समरकंद, वहाँ गर्मी पड़ती थी सो बोतल साथ में ले ली थी। साथ में डायरी, पेन, कैमरा रख लिया था। आँखों की नजर से कोई सुन्दर दृश्य छूट न जाये उन नज़रों को कैद करने के लिए कैमरा हाथ में ही रखा था। खरीददारी के लिए वहाँ की करंसी सुम भी साथ में ले ली थी। पच्चीस रुपयों का एक हजार सुम बनता था। सो रमेश के पास पचास हजार सुम थे। बोल्वो बस से वे स्टेशन पहुँचे थे। बाहर पानी का फाउन्टेन था। उसकी सजावट, बनावट हृदय को बरबस अपनी ओर आकर्षित

कर रहा था। यहाँ भारत जैसी भीड़ नहीं थी। वातावरण बिल्कुल शांत दिखाई दे रहा था। इसका एक कारण यहाँ की लोकसंख्या कम थी। स्टेशन बेहद स्वच्छ, सुन्दर और मोहक था। भीतर जाने के बाद देखा कि ट्रेन वहीं खड़ी थी। लग रहा था कि वह उनकी बरसों से प्रतीक्षा कर रही हो। हर बोगी के सामने रक्षक, टिकट चेकर खड़ा था। उनकी विनम्रता से वे बेहद प्रभावित हो चुके थे। उनके हाथों को कीटाणु या मैल न लगे इसलिए उन्होंने हँडल को पोछने के बाद ही उन्हें भीतर जाने दिया था। उनका यह आदर सत्कार उनके देश के गौरव और विनयता का प्रतिनिधित्व कर रहा था। रमेश से पहले आये साथियों को भीतर बैठाया गया था। रमेश और कुछ साथी पीछे छूट चुके थे। क्योंकि वे पलों को तस्वीरों में कैद कर रहे थे। गाइड ने उन्हें तुरंत भीतर चढ़ने के लिए कहा,

"चलो-चलो, जल्दी चलो ट्रेन छूटने वाली है।"

वे भी गड़बड़ी से भीतर चढ़ने लगे थे। बोगी वातानुकूलित थी। भीतर छह-छह लोगों का कम्पार्टमेंट था। उनके कारण सभी बोगी लगभग हाउस फुल हो चुके थे। गाइड ने रमेश को साथ लिया और एक कम्पार्टमेंट की खाली कुर्सी की ओर इशारा करते हुए बैठने के लिए कहा। वहाँ करुक्षेत्र के पुनित जी बैठे थे और बाकी सभी उज्बेकी लोग। एक बूढ़ा और एक बढ़ी स्त्री तथा उनका पोता जो उनके गाइड रुस्तम के साथ बैठे थे। खिड़की के पास एक खूबसूरत उज्बेकी लड़की बैठी थी। उसकी पासवाली कुर्सी पर पुनीत जी बैठे थे। और उनके बगल वाली कुर्सी पर रमेश को बैठना था। रमेश ने पुनीत जी को देखते ही प्रसन्नता के साथ कहा था-

"क्या बात है सर जी ! एक हीरो के साथ मुझे बैठने का मौका मिल रहा है।"

खुशी में,

"सर जी हिरोइन बाजू में बैठी है। इसे ले चलो भारत, फिल्म में हिरोइन के लिए।"

कहता हुआ वह उनकी बाजू वाली कुर्सी पर जा बैठा था जो रमेश के लिए थी। पुनीत जी मुस्कुराने लगे थे।

खिड़की के पास वाली कुर्सी पर बैठी लड़की से उसने हर्ष से कहा था,

"आप के पास जो बैठा है, वह इन्डियन फ़िल्म हीरो है।"

सुनकर उसकी मुख मुद्रा पर रौनक आ गई थी कि मेरे बगल में इन्डियन फ़िल्म हीरो बैठा है। पुनीत जी इस पर शर्माते हुए कहने लगे थे,

"अरे, भाई कुछ भी क्यों कह रहे हो।"

इस पर रमेश ने कहा, "कल ही तो आप अपनी पत्नी से मोबाइल पर बतियाते हुए कह रहे थे कि आप की फिल्म रिलीज हो रही है और घर वालों को प्रीमियर

शो देखने जाने के लिए कह रहे थे।

"हाँ भाई यह सच तो है पर मैं हरियाणवी फ़िल्म का हीरो हूँ बॉलीवुड का नहीं।"

रमेश ने कहा, "आप फ़िल्म के हीरो हैं ना तो बस अपने लिए इतना काफी है।"

पूनीत जी शर्माते हुए कहने लगे, "यार, तुम तो मुझे बड़ा बना रहे हो।"

करीब वाली लड़की की ओर देखकर पुनीत जी मेरी बात की सफाई देते हुए कहने लगे थे। "मैं बॉलीवुड फिल्म का हीरो तो नहीं पर रीजनल हरियाणवी फ़िल्म में अभिनय किया है। वास्तव में मैं टी.व्ही. धारवाहिक में बतौर कलाकार के रूप में काम करता हूँ।"

उस लड़की को अंग्रेजी आती थी। उसने बताया था कि वह ताशकंद के विश्वविद्यालय में अंग्रेजी की टीचर थी। वहाँ के अस्सी प्रतिशत लोगों को केवल उज्बेकी और रशियन भाषा आती थी। उन्हें टूटी-फूटी शब्दों वाली अंग्रेजी आती थी। इसलिए उनसे संपर्क बनाने व्यवहार के लिए बड़ी दिक्कत हो रही थी। उस लड़की ने रमेश और पुनीत से उनके देश आने का प्रयोजन पूछा था। जवाब स्वरूप पुनीत ने बताया था,

"हम यहाँ छह दिनों के अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी सम्मेलन के लिए आये हैं। जिसमें से एक हिस्सा देश भ्रमण का है। हम समरकंद जा रहे हैं।'

उत्सुकता और बात को आगे बढ़ाने के लिए उन्होंने उस लड़की से पूछा,

"आप कहाँ जा रही हैं?"

उसने मुस्कुराते हुए सहज कहा,

"मैं बुखारा जा रही हूँ।"

उसने बताया था कि वह उजबेक के सूफियों के लिए प्रसिद्ध बुखारा शहर के निकट एक गाँव से हैं। वह एक किसान की लड़की थी, जो कुछ दिनों की छुट्टी लेकर अपने घर माता-पिता से मिलने के लिए जा रही थी। वहाँ पर लड़कियों को पढ़ने लिखने की कोई पाबन्दी न थी। वह मुस्लिम लड़की थी। उजबेक में अस्सी प्रतिशत लोग मुस्लिम हैं। बाकी ईसाई और अन्य थे। वहाँ के लोग जितना गाँव में पारम्परिक थे, उतना ही शहरों में आधुनिक दिखाई दिए थे। जितनी लड़कियाँ खूबसूरत हैं उतने ही लड़के भी थे। मानो राजकुमार और राजकुमारियाँ हों। वहाँ प्रेम पर कोई पहरा नहीं था। वहाँ हर लड़के को अपनी पसंद से एक दूसरे का जीवन साथी चुनने का अधिकार था। लगभग 90 प्रतिशत विवाह वहाँ प्रेम विवाह होते हैं। न माता-पिता की रोक-टोक न ही समाज का भय। बस अपने दिल से अपना पसंदीदा साथी चुनो। उस लड़की से बाते करते हुए वहाँ की नई-नई बातें पता चल

रही थीं।

उस लड़की के पिता किसान होने के कारण उससे सम्बन्धित प्रश्न उन्होंने पूछे थे। वैसे प्रश्नों के लगातार पूछे जाने से वह थोड़ा-सा परेशान तो हुई थी पर खुशी से उसने प्रत्येक प्रश्नों का समाधान करने का प्रयास किया था।

"क्या तुम खेत में जाती हो?"

उसने कहा था, "हाँ कभी-कभी।"

"क्या तुम खेतों में काम करती हो?"

"जी नहीं, मैं खेतों में काम नहीं करती। पिताजी मुझे पढ़ने के लिए कहते हैं।"

सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई थी कि खेतों में काम करने वाला किसान परिवार भी अपनी लड़की को भूखा रहकर भी पढ़ाना चाहता है। वहाँ लड़की-लड़का भेद नहीं किया जाता। रमेश और पुनीत के बार-बार, लगातार, एक के बाद दूसरे सवालों के दागने से वह लगभग घायल हो चुकी थी। उसको नर्वस होता देख, पुनीत ने उसे सामान्य करने के लिए कहा था, "हमारे यहाँ तो गाँव में कमर कसके लड़कियाँ काम करती हैं, कुएँ से पानी निकालती हैं।"

"क्या तुमने कभी कुएँ से पानी निकाला है?"

उसने हँसते हुए कहा था, "नहीं, कभी नहीं।"

"अच्छा वह जाने दो, क्या आप के पास स्त्री और पुरुष दोनों खेत में काम करते हैं?" उसने प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा था "हाँ, दोनों भी काम करते हैं।"

वे आपस में कई विषयों पर बाते कर रहे थे। रमेश थोड़ा फ्रेश होने के लिए कम्पार्टमेंट में बाहर निकला था। गाइड से उसने फ्रेश होने के लिए स्थान पूछा था। हमारे ट्रेनों में तुरंत मिल जाया करते हैं क्योंकि बोगी के दोनों ओर टॉयलेट होते हैं। वहाँ की बोगी में केवल एक ही साइड में होता है। जब वह फ्रेश होने के लिए भीतर गया तो टॉयलेट ठीक-ठाक लगा। वहाँ पानी की व्यवस्था नहीं थी। वहाँ की खास बात यह थी कि टॉयलेट का दरवाजा ट्रेन के चलते ही खुल जाता था और रुकते ही बंद हो जाया करता था। शायद इसीलिए यहाँ के स्टेशन और पटरियाँ इतनी साफ सुथरी थीं। उसे लगा कि यदि हमारे ट्रेनों में भी यह लाकवाला सिस्टम शुरू हो जाये तो हमे कई हदतक अपने स्टेशन और ट्रेनों को स्वच्छ बना लिया समझिये। उसे ऐसा लग रहा था कि हमारे सभी लोगों को यहाँ लाये, यहाँ के साफ-स्वच्छ ट्रेनों के साथ शहरों की सफाई करवाएँ ताकि गंदगी पसंद लोगों को थोड़ी शरम आ जाये।

पुनिया जी ने युल्दुस से थ्याँक्यु का उज्बे की भाषा में अर्थ पूछते हुए कहा था, "युल्दुस थ्याँक्यु के लिए उज्बे की भाषा में क्या कहते हैं?"

उसने तुरंत जवाब देते हुए कहा, "राखमात्त"।

वे आरम्भ में उसका उच्चारण समझ नहीं पाए पर शब्दों को जोड़-जड़ाकर अलग-अलग ढंग से उच्चारण किया, जब उसने हाँ में गर्दन मुस्कुराते हुए हिलाया था तो उस शब्द को रमेश ने डायरी में लिख दिया था। इन्सान जिज्ञासु प्राणी होता है, होना भी चाहिए। जिसे बारे में हमें पता नहीं उसे पता करने की जिज्ञासा हममें होनी ही चाहिए। सो रमेश के भीतर और भी कई शब्द तैयार थे, जो उससे उज्बे की अर्थ पाता करवाय। एक शब्द तो उसने बताही दिया था। शुरूआत भी ठीक हो गई थी। वह अब उनकी उज्बेकी टीचर बन गई थी। जो अंग्रेजी के शब्दों के उज्बेकी अर्थ बताए जा रही थी।

उन्होंने उससे कहा, ''आप हमारी टीचर बन गई हो।''

वह भी इस पर मुस्कुराने लगी थी। उसने कई शब्दों के अर्थ बताये थे, जैसे-

स्वागत-हुस्किलफसिस,
अच्छा लगा-हुर्सान्दमान,
खुश-हुर्सान्द,
अभिनन्दन-थाब्रिक लाईमान,
कैसे हो- खालेसा,
मैं ठीक हूँ - आजोईब्ब,
हाँ - हाँ,
नहीं - याक,
गुस्सा - जाकरी चिकमा/जाखलदौर,
पानी - सु,
खाना - ओकत्स,
भूख - जाकम,
अच्छा - याक्षी,
आँखें - खोज,
पीटना - उरामान,
आप बहुत सुन्दर हो - सिस चिरोइली,
छोटा बच्चा - किचिक बोला,
गीत - खुशक
दाँत - तिश,
ओंठ - लप,
लड़की - खस,
लड़की सुन्दर है - चिरोइली हस,
लड़का - ओहल बोला/ईगेत,

आप का नाम क्या है? - सेनिग इस मी,
मेरा नाम - मेनिंग इस मी,
अंटी - खोला,
अंकल - फवा,
सुनो - थिन्गला मोक।

ताशकंद से समरकंद के सफर में उन्होंने कई काम चलाऊ शब्दों को पूछ लिया था, जो उनके देश में काम आ सकते थे। वहाँ के अधिकतर लोग अंग्रेजी और हिन्दी नहीं जानते थे। सो उस पर एक ही उपाय था कि यहाँ के कुछ शब्द सीख लिए जाएँ। जब वे लोग दिल्ली से ताशकंद के लिए जा रहे थे। तब हवाई सुन्दरी ने कुछ कहा था। उस समय रमेश कुछ समझ नहीं पाया था। उसने स्वागत स्वरूप-हुस्किलफसिस कहा था।

कई शब्दों को पूछने के बाद सबसे महत्त्वपूर्ण शब्द पूछना था। जहाँ सारे जहान की खुशियाँ मिल जाती हैं। उससे मुझे आय लव यू के लिए उज्बेकी शब्द पूछना था। पर कैसे पूछे? पर कहा जाता हैं न जहाँ चाह राह भी होती है। शब्दों को तोड़कर पूछा जाये।

रमेश ने पूछा, '''आय' के लिए क्या शब्द हैं?''

उसने बताया, ''मेन''

''यू'' के लिए.....

''सिजने।''

'लव' शब्द पूछने की हिम्मत नहीं हो रही थी। इसलिए 'यू' शब्द पहले पूछ लिया था। पर अबकी रमेश ने पूछ ही लिया था।

''लव के लिए?''

उसने कहा ''क्या''

रमेश ने फिर से पूछा ''लव के लिए उज्बेकी शब्द......?''

''लव के लिए .....हाँ .....हाँ .....हाँ .....''हँसते हुए ''सेवमान।''

अब तक वह पूरी तरह समझ गई थी कि रमेश ने उससे क्या पूछा था।

उनके सम्मुख पैंतालिस-पचास साल के स्त्री और पुरुष बैठे थे। उनके साथ उनका पोता बैठा हुआ था। बड़ी-बड़ी आँखों वाला वह खूबसूरत बच्चा सात या आठ साल का होगा। रमेश ने उससे कई बार बात करने की कोशिश की। उसकी ओर देखकर मुस्कुराया पर वह कोई प्रतिक्रिया नहीं दे रहा था। बात सीधी थी कि एक तो उसे उनकी भाषा समझ नहीं आ रही थी। दूसरा वे उसकी नजरों में पराएँ लोग थे या फिर हो सकता था कि उनकी शक्ल उसे पसंद नहीं आ रही हो। पर उससे कुछ न कुछ बात करनी तो थी ही। युल्दुस ने बताया कि छोटे बच्चों को ''कीचक

बोला'' कहा जाता है।

रमेश ने उससे पूछा ''हे कीचक बोला खालेसा?'' मतलब हे बच्चे कैसे हो?

वह सुनते ही गुस्से में आँखे तरेरने लगा था। अब तक वह उनकी ओर बीच-बीच में देख रहा था। अब वह ट्रेन की सीलबंद खिड़की से बाहर देखने लगा था। वे समझ ही नहीं पाए थे कि उसे क्या हुआ है। उन्होंने तो सीधा सा सवाल ही तो पूछा था। बच्चे तुम कैसे हो? एक पल के लिए लगा कि युल्दुस ने गलत तो नहीं बताया। पर टीचर पर विश्वास तो करना ही था। अविश्वास करके कहाँ जाते। उसे गुस्से में देख युल्दुस से गुस्से के लिए उज्बेकी शब्द पूछा ''जाखल दौर।''

फिर से शब्दों को जोड़-जाड़ कर उस बच्चे से बात करना चाहा।

''हे कीचक बोला जाखल दौर?'' क्या तुम गुस्से में हो?

अब की बार तो वह बेहद गुस्से में आ गया था। पहले से ही बड़ी आँखों को और भी बड़ा कर न जाने क्या-क्या बोले जा रहा था। रमेश समझ गया था कि वह हमारे बारे में अच्छा तो नहीं बोल रहा था। उसकी दादी ने भी उसके मुँह पर हाथ रख दिया था। उसके रौद्र रूप को देखकर बालक की लीला पर खुशी भी हो रही थी। और साथ में दु:ख भी कि नाराज क्यों हो रहा है। रुस्तम गाइड अब तक झपकिया ले रहा था वह जान गया। उसने उनकी बात सुन ली थी।

''आप तो अच्छा ही बोल रहे हो पर पर उसे कीचक बोला से ऐतराज है।''

रमेश ने उससे पूछा ''वह कैसे?''

उसने बताया ''कीचक बोला शिशु बालक के लिए कहा जाता है। वह कह रहा है कि मैं शिशु बालक नहीं हूँ। अब मैं बड़ा हो गया हूँ।''

इस पर उन्होंने खूब ठहाके लगाये थे। वह पहली बार अपने माता-पिता को छोड़कर अपनी दादी-दादा के साथ उज्बेकिस्तान की राजधानी ताशकंद जा रहा था। वह वहाँ घूमेगा-फिरेगा, नई-नई जगह देखेगा, खरीदेगा। वैसे भी वह कई महीनों से अपने माता-पिता से कह रहा था कि, ''मुझे शहर जाना है।''

आज उसे मौका मिला था। अब वह सारे अरमान पूरे करने वाला था। उसकी खुशी में उन्होंने खलल डाल दिया था।

सुबह जल्दी उठने से आँखों में नींद शरारत कर रही थी। न जाने रमेश कब उस शरारत का शिकार हो गया था पता ही नहीं चला था। सो निद्रा लोक में भ्रमण करने के लिए चला गया था। कभी-कभी कुछ पलों की नींद भी सारी थकान मिटा देती है। दूसरे शब्दों में कहे रिचार्ज कर देती है। जब निद्रा लोक से पुनः मृत्यु लोक में पहुँचा तब पुनीत जी चाय का कप हाथों में लिए कह रहे थे,

''चाय लीजिये गरमा-गर्म चाय आप के लिए मंगवाई हैं।''

पुनीत जी ने सबके लिए भी चाय मंगवाई थी। ए. सी. से ठण्ड भी महसूस

हो रही थी। ऐसे में गरमा-गर्म चाय चुसकियाँ लेकर पीना शरीर को सुखद गर्माहट देने वाला था।

''रमेश ने कहा मैं चाय नहीं पीता।''

''अरे यार, पीलो मैंने ऑर्डर की है। ठण्ड में राहत मिल जाएगी।''

रमेश कभी चाय तो नहीं पीता पर ठण्ड और पुनीत जी के सस्नेह को ठुकरा न पाया। पीता तो नहीं पर पी तो सकता था। सो चाय की गरमा-गर्म चुस्की लेने लगा था। चाय के ग्लास पर कप का चित्र तराशा हुआ था। जो अपनी अलग पहचान की अमिट छाप को उनके स्मृति कोष में छोड़े जा रहा था। वहाँ चाय काली ही पी जाती है, पर पुनिया जी के कहने पर उन्हें दूधवाली चाय दी गई थी। दूध के साथ चाय तो मेरे ज्ञान के अनुसार सिर्फ भारत में ही पी जाती है। ठण्ड और बाहर का सुंदर दृश्य हृदय को असीम आनंद दिए जा रहा था।

कम्पार्टमेंट में दोनों ओर टी, व्ही. लगी हुई थी। उस पर उज्बेकी गीत चल रहे थे।

रमेश ने रुस्तम से पूछा, ''दूसरा चैनल लगाओ भाई, एक ही चैनल है क्या?'' रुस्तम ने बताया, ''यह सी.डी. पर चल रहा है। चलती हुई ट्रेन में टी.व्ही. नहीं चल सकती।''

सी.डी. पर वहाँ के प्रसिद्धि वीडियो गीत चल रहे थे। उनमे से अधिकतर गीत रोमांटिक थे। वह भाषा उन्हें समझ तो नहीं आ रही थी पर सुनने में संगीत अच्छा लग रहा था। ऐसे भी उसे देखने के आलावा कोई और उपाय नहीं था। युल्दुस से पता किया कि गीतों को उज्बेकी में क्या कहा जाता है। उसने गीत के लिए ''खुशक'' शब्द बताया था। बीच-बीच में रोमांटिक गीतों कि उन्होंने उसने सिखाये शब्दों को जोड़कर प्रशंसा भी की थी।

''याक्षी खुशक'' गीत अच्छा हैं।

अब उसे भी अपनापन लगने लगा था। उस दिन रमेश सही मायने में समझा कि भाषा इंसानों को और भी करीब लाती है। रमेश ने उससे वहाँ के प्रसिद्ध गायक के बारे में पूछा था।

''युल्दुस, यहाँ का प्रसिद्ध गायक कौन हैं?''

इस पर उसने ''आझाद'' नाम बताया था। आझाद वहाँ का प्रसिद्ध गायक था। वहाँ के लोगों में खासकर लड़को-लड़कियों में वह बड़ा ही प्रसिद्ध था। हर एक की जबान पर उसका ही नाम अंकित था। क्योंकि वह रोमांटिक गीतों का गायक था।

तीन घंटों का सफर अब ख़त्म होने जा रहा था। तीन सौ किलोमीटर दूर स्थित समरकंद को मेट्रो ट्रेन ने प्रति घंटा सौ किलो मीटर की रफ्तार से लगभग पूरा कर

लिया था। अब किसी भी समय समरकंद आने वाला था। जैसे-जैसे समय बीत रहा था वैसे-वैसे दिल की धड़कने तेज हो रही थीं। हँसी-खुशी में शुरू हुआ सफर चेहरों पर उदासी से समाप्त होने जा रहा था रमेश ने कम समय में बेगानों से रिश्ता-सम्बन्ध बना लिया था। कहीं भी, कभी भी, किसी भी स्थान या देश में कुछ रिश्ते-सम्बन्ध अचानक जुड़ जाते हैं। और वे अविस्मरणीय बन जाते हैं। कुछ पलों का प्रगाढ़ सम्बन्ध जहाँ हम एक पूरी जिन्दगी बाहरी विश्व को भुला कर जी जाते हैं। बिछड़ने का दर्द और यादों के सहारे जिन्दगी के उन हसीन पलों को एकांत में अक्सर याद करते रहते हैं। युल्दुस के साथ का सफर हमेशा याद रहेगा। युल्दुस, उसकी बातें, वह चाय, वह कीचक बोला, रुस्तम, पुनीत जी, वह ट्रेन, अक्सर एक दूसरे को याद आते रहेंगे। युल्दुस के साथ समरकंद कब आया पता ही नहीं चला। लग रहा था कि यह सफर कभी न खत्म हो, पर हर यात्रा की मंजिल होती ही है। वहाँ रुकना ही पड़ता है। ताकि हम शुरू करे नई यात्रा को। नये दोस्त, नये देश, नई बातें, नई यादें......।

ट्रेन समरकंद आकार रुक गई थी। आँखों में सब के गीलापन था। पर झूठे मुस्कान ने उसे ढका हुआ था। बैंग को पीठ पर ले कम्पार्टमेंट से बाहर आते हुए रमेश ने उसके हाथों में हाथ मिलाते हुए कहा था, ''सिस चिरोइली'' आप बहुत सुन्दर हो। और ''खायर'' कहते हुए निकल पड़ा। प्रतिक्रिया स्वरूप उसने भी खायर कहा, और एक मधुर मुस्कराहट भरी आवाज में कहा ''मेन सिजने सेवमान।'' अब रमेश रुक नहीं सकता था। उतरना अनिवार्य था सो नीचे उतर गया। रमेश के कानों में गूँज ने वाले मधुर शब्द ''मेन सिजने सेवमान'' गूँजते हुए हृदय में प्रवेश कर गये थे। जो आज यादों के एल्बम में तस्वीर बने हैं। खायर....।

♦